हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मध्यमा के विद्यार्थियों के लिए अयोध्याकाण्ड का यह संस्करण तैयार किया गया है। इसमें महाकवि तुलसी के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में संक्षिप्त परन्तु पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और आशा है कि विद्यार्थी-वर्ग तुलसी के महत्व को समझने और उनकी कृतियों के अध्ययन करने का एक सुलभ मार्ग इस भूमिका द्वारा पा जायगा। इस भूमिका में उन्हीं बातों की ओर विशेष संकेत किया गया है, जो परीक्षा में पूछी जाती हैं। इसलिए हमारा विश्वास है कि विद्यार्थियों को तुलसीदास, रामचरितमानस और अयोध्याकाण्ड के सम्बन्ध में संभावित प्रश्नों के हल ढूँढने के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ेगा। अपनी ओर से हमने विचार पूर्वक प्रत्येक प्रश्न को छूने का प्रयत्न किया है फिर भी संभव है कि कुछ आवश्यक बातें न आ पाई हों। उनकी ओर विद्यार्थी तथा अध्यापक हमारा ध्यान आकर्षित करने का कष्ट करेंगे तो अगले संस्करण में संशोधन-परिवर्द्धन करने की चेष्टा की जायेगी और लेखक विशेष रूप से उन महानुभावों का कृतज्ञ होगा।

इस पुस्तक की टिप्पणी तैयार करने में श्री जोमदार सिंह वर्मा साहित्यरत्न ने प्रशंसनीय श्रम किया है।

यदि विद्यार्थियों को इस संस्करण से लाभ पहुँचा तो हम अपने श्रम को सफल समझेंगे।

ना० प्र० सभा,

आगरा।

२१-५-५०

विनीत,

कमलेश

भारतीय संस्कृति के उद्धारक और पोषक महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में अनेक बातों में मत भेद है और विद्वज्जन अभी तक किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। इसका कारण यह है कि अन्य महात्माओं की भांति इस दिव्य पुरुष ने भी अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ संकेत नहीं किया है, जिसके कारण उनके जीवन की संशयरहित निश्चित रूपरेखा देना असंभव और असाध्य ही रहा है। इतना होने पर भी किंवदन्तियों और उनके ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरे विरल संकेतों के आधार पर तथा कुछ अन्य समकालीन तथा परवर्ती लेखकों के ग्रथों के आधार पर उनके जीवन क्रम को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। जिन ग्रन्थों से गोस्वामीजी के जीवन पर प्रकाश पड़ता है, वे हैं

१ गोसाईं चरित

२ मूल गोसाईं चरित

३ तुलसी चरित

४—भक्तमाल

५—तुलसी साहिब का घट रामायण (आत्मचरित वाला अंश)।

६ भक्तमाल की प्रियादास की टीका

७ दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता

८— गोरो पतकी तुलसी-स्तवन

९—भविष्य पुराण

इन ग्रन्थों को बाह्य साक्ष्य कहेंगे। इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी ने 'विनय पत्रिका'; 'कवितावली' आदि में अपने सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, उसे अन्तः साक्ष्य कहेंगे। बाह्य साक्ष्य और अन्तः साक्ष्य में जन श्रुतियाँ और मिलाई जा सकती हैं। इन सबसे मिलकर गोस्वामी जी का जो जीवन वृत्त बनता है उस पर हम नीचे विचार करेंगे।

जन्म संवत् जन्म संवत् के सम्बन्ध में कवि की कृतियों में कोई उल्लेख नहीं है। हम केवल किंवदंतियों और बाह्य साक्ष्य के आधार पर ही जन्म संवत् के सम्बन्ध में निर्णय कर सकते हैं। 'राम मुक्तावली' के आधार पर स्वर्गीय जगन्मोहन वर्मा का कहना था कि तुलसीदास जी १२० वर्ष तक जीवित रहे और उनका जन्म सम्वत् १५६० होना चाहिए। 'मानस-मयंक' का लेखक कहता है कि कवि का जन्म सम्वत् १५५४ में हुआ था। विल्सन और तासी 'रामचरित मानस' की रचना के समय कवि की अवस्था इकत्तीस वर्ष की मानकर कवि का जन्म संवत् १६०० मानते हैं। शिवसिंह सेंगर का कथन है -- 'यह महाराज सम्वत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे।' ग्रियर्सन और रामगुलाम द्विवेदी उन्हें सम्वत् १५८९ में उत्पन्न मानते हैं। तुलसी साहिब हाथरस वाले के आत्मोल्लेख के आधार पर गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ भादों सुदी ११ मंगलवार को हुआ था। यह तिथि ज्योतिष गणना के अनुसार ठीक बैठती है। इसलिए इसी को कवि का जन्म सं० मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसके पहले की जो तिथियाँ हैं वे कई दृष्टियों से अशुद्ध हैं। इसलिए उन्हें विद्वान विश्वसनीय नहीं मानते।

जन्मस्थान जन्म सं० की भांति जन्मस्थान के सम्बन्ध

में भी पर्याप्त मतभेद है। कोई इनका जन्म स्थान तारी बतलाता है, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर, कोई बाँदा जिले में राजापुर और कोई सोरों सूकरक्षेत्र। चित्रकूट के पास हाजीपुर का उल्लेख पहले-पहल मिल्सन ने किसी जनश्रुति के आधार पर किया था। तासी ने भी उसी आधार पर इसी स्थान को उनकी जन्म भूमि माना। तारी का नाम भी किसी किंवदन्ती के आधार पर ही लिया गया है। विवाद वास्तव में राजापुर और सोरों के सम्बन्ध में है। राजापुर को गोस्वामी जी का जन्मस्थान मानने वालों में पं० रामगुलाम द्विवेदी, शिवसिंह सेंगर, बाबा बेणी माधवदास प्रमुख हैं। सन्त तुलसी साहिब (सं० १८२०-१९००) ने अपने को 'मानस' के रचयिता का अवतार मानते हुए 'घट रामायण' में अपने पहले चोले का राजापुर में ही उत्पन्न होना लिखा है राजापुर में सरयूपारीण ब्राह्मणों का एक वंश है, जिसके लोग अपने को गोस्वामी जी के शिष्य गणपति उपाध्याय का वंशज बतलाते है। इनको राजापुर तथा 'नयागाँव (चित्रकूट) मे मुआफी मिली हुई है। कहते हैं कि यह मुआफी अकबर से मिली थी पर इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। 'श्री रामचरित मानस' के अयोध्याकाण्ड का 'तापस प्रसंग' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। ग्रामवासियों के वर्णन के बीच आ जाने वाला तापस स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी हैं, जो राम को अपनी जन्मभूमि में आया देखकर अभिनन्दनार्थ वहाँ पहुँच गए। अयोध्याकाण्ड में गोस्वामी जी यमुना पार करने पर ही भावावेश में आए है और ग्रामवासी स्त्री-पुरुषों की मनोवृत्ति का प्रभावशाली वर्णन किया है। ऐसा जन्मभूमि प्रेम के कारण ही उन्होंने किया है।

सोरों के पक्ष में जो तर्क दिए गए है, उनका कारण सोरों

से प्राप्त सामग्री है। श्री रामनरेश त्रिपाठी, रामदत्त भारद्वाज आदि सोरों को उनकी जन्मभूमि मानते हैं। उनके तर्कों में सब से पहला तर्क यह है कि 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली' और 'विनय पत्रिका' में बहुत से ऐसे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग है जो सोरों में जिस अर्थ में प्रचलित हैं, राजापुर और तारी में नहीं। दूसरा तर्क है कि 'गीतावली में तुलसीदासजी ने 'भौरा और चकडोरी' (खेलत अवध खोरि भौरा चकडोरि) खेलने का वर्णन किया है, जिसका प्रचार सोरों में तो है पर अयोध्या, बनारस और राजापुर में नहीं। तीसरा तर्क यह है कि तुलसीदास के ब्रजभाषा और अवधी मिश्रित भाषा में सफलता पूर्वक रचना करना, अरबी-फारसी के शब्दों का स्वच्छन्दता से प्रयोग करना आदि से सिद्ध होता है कि वे ब्रज और अवध की सरहद तथा पश्चिमी प्रान्त के किसी स्थान पर उत्पन्न हुए थे। पाँचवाँ तर्क यह है कि वार्ता में तुलसीदास को नन्ददास का भाई बताया गया है। नन्ददास रामपुर ग्राम के निवासी माने गए हैं, जो सोरों के निकट था और जहाँ नन्ददास के पिता का जन्म हुआ था। वे किसी कारण वश वहाँ से आकर सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में आबाद हो गए थे। छटा तर्क यह है कि तुलसीदास विरक्त होकर घर छोड़ गए थे इसलिए यदि राजापुर को उनकी जन्मभूमि माना जाय तो यह उचित नहीं प्रतीत होता कि विरक्त होकर फिर वहीं रहे हों। सोरों के पक्ष में यह ठीक बैठ सकता है कि एक बार सोरों छोड़ कर फिर वहाँ न गए हों। सातवाँ तर्क यह है कि तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' में 'यह भरतखण्ड समीप सुरसरि थल भलौ संगति भली' कह कर 'सुरसरि' (गंगा) के समीप वाले थल को अपना जन्मस्थान बताया है, जो सोरों की ओर संकेत करता है। आठवाँ तर्क यह

है कि तुलसीदासजी ने बचपन में अपने गुरु से सूकर खेत में रामकथा सुनी थी

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत ।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

इस प्रकार राजापुर और सोरो के पक्षों का समर्थन करने वाले विद्वान अपने-अपने तर्क देते हैं। इनसे यह निर्णय करना बड़ा कठिन है कि तुलसीदास जी का जन्म स्थान कौनसा था। समन्वय वादी लोग यह मानते हैं कि उनका जन्म सोरों में हुआ था और वे बहुत दिन तक राजापुर मे रहे थे।

जाति-पाँति इस बात में किसी को भी सन्देह नहीं है कि तुलसीदास जी ब्राह्मण थे। यदि मत भेद है तो उनकी उपजाति के सम्बन्ध मे। कोई इन्हें कान्यकुब्ज मानता है, कोई सरयूपारीण और कोई सनाढ्य। राजा प्रतापसाहि ने 'भक्तकल्पद्रुम' में इन्हें कान्यकुब्ज माना है पर 'शिवसिंह सरोज' में इन्हें सरयूपारी माना है। डाक्टर ग्रियर्सन पं० रामगुलाम द्विवेदी के आधार पर इन्हें पाराशर गोत्र के सरयूपारी दुबे लिखते है। 'तुलसी पाराशर गोत दुबे पति औजा के' ऐसा प्रसिद्ध भी है। सोरों जन्म स्थान के समर्थको का कहना है कि तुलसीदास सनाढ्य थे और उनका गोत्र 'शुक्ल' था। वे इसके लिये २५२ वैष्णवों की वार्ता में उल्लिखित नन्ददास की वार्ता तथा 'विनय पत्रिका' की निम्नलिखित पंक्ति उद्धृत करते हैं

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको'

साथही यह भी कहते हैं कि यदि गोस्वामी जी सनाढ्य न होते तो काशीमें अपनी जाति-पाँति बतलाने मे आना कानी क्यों करते।

इस प्रकार तुलसीदास जी की जाति-पांति के सम्बन्ध में

बड़ा मत भेद है। अधिकतर लोगों का झुकाव उन्हें सरयूपारी ब्राह्मण मानने की ओर है। वैसे उन्होंने जाति-पाँति को विशेष महत्व नहीं दिया

'धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ'

माता-पिता तुलसीदास जी ने अपने ग्रन्थों में कहीं भी अपने माता-पिता का नाम स्पष्ट रूप से नहीं दिया। यह बात अवश्य प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। नीचे के दोहे से इस ओर संकेत होता है

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय॥

इस दोहे का उत्तरार्द्ध रहीम खान खाना द्वारा बनाया हुआ कहा जाता है। बाबा वेणीमाधवदास ने भी इनकी माता का नाम हुलसी लिखा है। स्वयं तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में लिखा है

'रामहि प्रिय पावन तुलसी सी, तुलसिदास हित हिय हुलसी सी'।

तुलसी चरित के अनुसार तुलसीदास ने स्वयं अपने पूर्वजों तथा भाई-बहनों का वर्णन किया है, जिसके अनुसार उनके प्रपितामह परशुराम मिश्र थे, जिनके पुत्र शंकर मिश्र हुए। इनके दो पुत्र सन्त मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र हुये। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। पुत्रों के नाम गणपति, महेश, तुलाराम और मंगल तथा कन्याओं के वाणी और विद्या थे। ये तुलाराम ही हमारे चरितनायक गोस्वामी तुलसीदास हैं।

नाम अभी कहा गया है कि बाबा रघुवरदास के तुलसी चरित के अनुसार इनका नाम तुलाराम था-'तुलसी तुलाराम

मम नामा, तुला अन्त धरि तौलि स्वधामा।' लेकिन 'विनय पत्रिका' में उन्होंने 'रामबोला' अपना नाम बताया है

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।
(विनय० ७६)

'कवितावली' के एक छन्द मे कवि ने अपना नाम 'तुलसी' ही लिखा है, जिसमें 'दास' जोड़ने से 'तुलसीदास 'होगया।

नाम तुलसी पै भौंड़े भागसौं कहायौ दास,
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
(कविता० उत्तरकाण्ड १३)

'बरवै रामायण' और 'दोहावली'में भी 'तुलसी' नाम होने का संकेत है

केहि गिनती महँ गिनती जस वन घास।
नाम जपत भए तुलसी तुलसीदास॥
(बरवै रामायण छ० ५६)

नाम राम को कल्पतरु, कलि कल्यान निकास।
जो सुमिरत भयो भाँग ते, तुलसी तुलसीदास॥
(दोहावली दोहा ११)

इससे पता चलता है कि तुलसीदास का मूल नाम तो तुलसी था। हाँ उनका आध्यात्मिक नाम 'रामबोला' रहा होगा। यह संभव है कि पीछे से वैष्णव मण्डली ने उनका यह नाम रख दिया हो।

बाल्यकाल तुलसीदास जी का बाल्यकाल बड़े कष्ट में बीता। उन्होंने स्वयं लिखा है कि उन्हें उनके माता-पिता ने छोड़ दिया था और उन्हें बड़े कष्ट उठाने पड़े थे। अन्त.साक्ष्य है

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
(कविता० उत्तर० ७३)

+ + + +

मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हू न लिखी कछु
भाल भलाई।
(कविता ० उत्तर० ५७)

+ + + +

तनु जन्यौ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।
(विनय पत्रिका २७५)

बालक बिलोकि बलि बारे ते आपनो कियो,
दीनबन्धु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारिए।
रावरो भरोसो तुलसी को रावरोई बल,
आस रावरीए दास रावरी बिचारिए।
(बाहुक २१)

अभिप्राय यह है कि माता पिता से रहित होने के कारण तुलसीदासजी को बचपन में बड़ा कष्ट सहना पड़ा। हनुमानजी का उन्हें इष्ट था। और दरिद्रता में पालित-पोषित होने पर भी तुलसी के मन में प्रभु के प्रति प्रेम का अंकुर बचपन से ही जम गया था।

गुरु तुलसीदासजी 'रामचरितमानस' में लिखते हैं

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥
तदपि कही गुरु बारहिं बारा, समुझि परी कछु मति अनुसारा।
भाषा बद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

परन्तु गुरु का नाम उन्होंने कहीं नहीं दिया । 'रामचरित-मानस' के आदि में मंगलाचरण में यह सोरठा लिखा है

वंदउँ गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर ॥

इस दोहे के 'नर रूप हरि' के आधार पर लोग नरहरिदास को इनका गुरु मानते है । नरहरिदास रामानन्दजी के बारह शिष्यों मे थे । विल्सन किसी जनश्रुति के आधार पर कवि के गुरु का नाम जगन्नाथदास बतलाते है, जोकि उन्हीं के अनुसार नाभादास के शिष्य थे । 'भविष्य पुराण' कहता है कि कवि के गुरु काशी निवासी राघवानन्द थे और उन्होंने ही इन्हें रामानन्दी सम्प्रदाय के अन्तर्गत अंगीकृत किया था । ग्रियर्सन ने कवि की गुरु परम्परा की दो सूचियाँ प्राप्त की हैं । जिनके अनुसार ये रामानन्द के पश्चात आठवें ठहरते हैं

(१) रामानन्द, (२) सुरसुरानन्द, (३) माधवानन्द, (४) गरीबदास, (५) लक्ष्मीदास, (६) गोपालदास, (७) नरहरिदास, (८) तुलसीदास ।

वेणीमाधवदास ने स्पष्ट रूप से इनके गुरु का नाम नरहरि दास लिखा है, जो रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द के शिष्य थे । रामानन्द का समय सं० १३५६ से १४६७ तक है । इस दृष्टि से नरहरिदास जी को सोलहवीं शताब्दी में होना संभव है। 'तुलसीचरित' मे गोस्वामी जी को गुरु रामदास को बताया गया है ।

सोरों की सामग्री के आधार पर कहा जाता है कि कवि के गुरु का नाम नरसिंह चौधरी था और वे सोरो निवासी थे । वहाँ एक मन्दिर भी है जो उन्हीं का बताया जाता है ।

अभी गुरु के सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है ।

विवाहित जीवन और वैराग्य यह प्रसिद्ध है कि इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था, जो बचपन में ही मर गया। कहते हैं कि इन्हें अपनी स्त्री से बड़ा प्रेम था। एक बार जब उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी अपने पिता के यहाँ चली गई और ये भी वियोग को न सहकर वहाँ जा पहुँचे तो उसने कहा था--

लाज न लागति आपको, दौरे आयेहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चरम मय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
ऐसी जो कहुँ राम महँ, होत न तो भवभीति॥

इस पर तुलसी विरक्त होकर चल दिये और तपस्या और साधना के पश्चात राममय होगये। बहुत दिन बाद जब वे चित्रकूट से लौट कर अपने ससुर के यहाँ ठहरे। स्त्री बूढ़ी हो गई थी। पति को पहचानकर उसने चाहा कि चरण धोकर कपूर आदि से उनकी पूजा करे पर गोस्वामी जी राजी न हुये। रात भर सोच विचार कर उसने गोस्वामी जी से कहा--

खरिया, खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलिकै, अचल करहु अनुराग॥

परन्तु तुलसीदास ने उन्हें साथ नहीं लिया। कुछ लोग 'विनय पत्रिका' के 'ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।" के आधार पर कहते हैं कि उनका विवाह ही नहीं हुआ था परन्तु यह वैराग्य होने के बाद का कथन है। 'बाहुक' की निम्नलिखित पंक्तियों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि तुलसी बाल्यावस्था में राम सम्मुख होने के उपरान्त 'लोकरीति' में पड़े थे--

बालिपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
राम नाम लेत मांगि खात टूक टाक है।

परयो लोक रीति में पुनीत प्रीति राम रामय,
मोह बस बैठ्यो तोरि तरक तराक हौं।

(बाहुक ४०)

गृह त्याग के पश्चात कवि ने एकान्त और सामाजिक दोनों प्रकार के जीवनों के मध्य का मार्ग अपनाया प्रतीत होता है

घर छोड़े घर जात है, घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही, राम प्रेम पुर छाय॥

(दोहा २५६)

मित्र और परिचित तुलसीदास जी ने अपने पर्यटन और साधना काल मे अनेक मित्र बनाए थे। सब से पहले मित्र और परिचित कोई गंगाराम जान पड़ते हैं। इनके लिये उन्होंने 'रामाज्ञा प्रश्न' की रचना की थी। टोडर कवि के दूसरे मित्र थे, जो काशी के जमीदार थे। उनकी मृत्यु के बाद उनकी जमींदारी का बटवारा तुलसीदासजी ने स्वयं उनके उत्तराधिकारियों में एक पंचायत नामे के द्वारा कर दिया था।' जिसके आरम्भ की कुछ पक्तियाँ उन्हीं के द्वारा लिखी हुई है। पंचायत नामे पर १६६६ की तिथि है और वह काशी राज के संग्रह मे है। टोडर के वंशज आज तक कवि की बर्षी मनाते है और उसकी मृत्यु तिथि पर सीधा बाँटते हैं। तीसरे मित्र अकबर के प्रसिद्ध वजीर नबाब अब्दुर्रहीम खानखाना थे। कहते हैं कि एक गरीब ब्राह्मण ने अपनी कन्या के विवाह के लिए तुलसी की सहायता माँगी। तुलसी ने यह आधा दोहा लिख कर कहा कि खानखाना के पास जाओ

कहते है कि इस पर भगवान ने राम रूप में दर्शन दिए और

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।

खानखाना ने धन देकर उत्तर में दोहे को पूरा करते हुए लिखा

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

आमेर के महाराज मानसिंह भी कवि के स्नेही थे। ये तथा कुछ अन्यराजे कवि के दर्शनों को जाया करते थे। कवि ने स्वयं अपनी इस स्थिति के सम्बन्ध में लिखा है

घरघर मागे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥

बैजनाथदास ने लिखा है कि शंकर मतानुयायी श्री मधुसूदन सरस्वती ने इनसे प्रसन्न होकर निम्नलिखित श्लोक बनाया था

आनन्द कानने कश्चिज्जङ्गम तुलसी तरु।
कविता मंजरी यस्य रामभ्रमर भूषित॥

मीराबाई का भी तुलसीदासजी का परिचय था। कहते हैं कि घर वालों से तंग आकर जब मीरा ने तुलसीदासजी को लिखा था कि

मेरे मात पिता के सम हौ, हरिभक्तन सुखदाई।
हमकूँ कहा उचित करिबौ है, सो लिखिए समुझाई॥

तब तुलसीदास ने लिखा था

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।

नाभादासजी ने तो अपने भक्तमाल में इनकी भारी प्रशंसा की है। 'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो' कह कर उन्होंने उनको साक्षात् वाल्मीकि ही माना है।

इसके अतिरिक्त नन्ददास को उनका भाई माना जाता है। सूरदास से उनकी भेंट होना भी बताया जाता है। कवि केशव और तुलसी के समागम की बात भी प्रसिद्ध है, जिसमें कोई केशव जीवितावस्था में और कोई प्रेतावस्था में मिलन बताते हैं।

चमत्कार गोस्वामी के जीवन में भी अन्य महात्माओं की भाँति चमत्कारों का समावेश हो गया है। उनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

(१) मुर्दे को जिलाना एक समय एक ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री सती होने जा रही थी। गोस्वामीजी ने उस स्त्री के प्रणाम करने पर उसे 'सौभाग्यवती' होने का आशीर्वाद दिया। लोगों ने कहा 'महाराज इसका तो पति मर गया है, यह सती होने जा रही है और आपका आशीर्वाद झूठा नहीं हो सकता। गोस्वामी ने कहा कि 'जब तक मैं गंगा स्नान करके न आऊँ, इस मुर्दे को जलाना मत,। गंगा स्नान करके वे तीन घंटे तक भगवत्स्तुति करते रहे और मुर्दा जी उठा।

(२) कृष्ण-मूर्ति का राम-मूर्ति हो जाना दिल्ली से गोस्वामीजी वृन्दावन गए। एक मन्दिर में कृष्ण मूर्ति के दर्शन करके उन्होंने कहा।

का बरनउँ छवि आजकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लेउ हाथ॥

तब तुलसीदासजी ने उनको प्रणाम किया।

(३)भाषा की महत्ता घनश्याम शुक्ल नामक एक संस्कृत के श्रेष्ठ कवि को भाषा में कविता करना बहुत अच्छा लगता था, एक पंडित ने उनसे कहा कि इस विषय को देववाणी संस्कृत में न लिखने से ईश्वर अप्रसन्न होते है, इसलिए आप आगे से संस्कृत मे लिखा कीजिए। उन्होंने जब तुलसीदासजी से पूछा तो उन्होंने कहा--

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवे कामरी, का लै करै कमाच॥

(४)स्त्री का पुरुष चित्रकूट की यात्रा के समय उन्होंने एक राजा की कन्या को चरणामृत देकर पुरुष बना दिया। 'दोहावली' के निम्नलिखित दोहो से उस घटना का आभास मिलता है--

कबहुँक दरसन सन्त के, पारस मनी अतीत।
नारी पलट सो नर भयौ, लेत प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुवर सेवतहिं, मिटि गो काली काल।
नारी पलट सो नर भयौ, ऐसे दीन दयाल॥

(५) बादशाह की कैद गोस्वामीजी के मुर्दा जिलाने की बात जब बादशाह के कान तक पहुँची तो उसने इन्हें बुलाया और कहा कि कुछ करामात दिखाओ। तुलसीदासजी ने कहा कि "मै सिवा राम नाम के और कोई करामात नही जानता।" बादशाह ने इन्हें कैद कर लिया और कहा कि "जब तक करामात न दिखाओगे, छूटने नहीं पाओगे।" तुलसीदास ने

हनुमानजी की स्तुति की, जिस पर हनुमानजी ने अपनी वानर सेना से कोट को विध्वंश कर दिया। बादशाह ने गोस्वामीजी के पैरों पड़ कर क्षमा माँगी। गोस्वामीजी की प्रार्थना पर हनुमानजी ने उपद्रव शान्त कर दिया। कहते हैं कि बादशाह को दूसरा कोट निर्माण कराना पड़ा था, क्योंकि पहले में हनुमानजी का वास हो गया था।

रोग तथा कष्ट अपने अन्तिम समय मे तुलसीदासजी को कई भयङ्कर रोगो का शिकार होना पड़ा था। वे रोग तीन थे महामारी (ताऊन), दुर्भिक्ष और वातरोग। (कवितावली के) १३७ वें कवित्त में तुलसीदासजी ने लिखा है "बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ी बारानसी बूझिए न ऐसी गति शङ्कर सहर की।" इससे सिद्ध होता है कि इस समय रुद्रबीसी थी ज्योतिष गणना से यह समय सवत १६६५ से १६८५ तक का है। महामारी का वर्णन 'कवितावली' के १७६ में कवित्त मे इस प्रकार है

शंकर शहर सर, नर नारि वारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत, उतरात, हहरात, मरिजात,
भभर भागात, जल थल मीचु मई है॥
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित्त,
बारानसी-बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज, रामदूत,
रामहू की बिगरी तुही सुधारि लई है॥

तुलसीदासजी को इस महामारी के अतिरिक्त बाहुपीड़ा तथा अन्य कष्ट भी सहने पड़े थे। दोहावली, विनय-पत्रिका और

'कवितावली' में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। पीड़ा बाँह से आरम्भ हुई थी और फिर सारे शरीर में व्याप्त हो गई थी, ऐसा संकेत मिलता है। अपनी पीड़ा का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी लिखते हैं--

> पाँय पीर, पेट पीर, बाँह पीर, मुँह पीर,
> जर-जर सकल शरीर पीर भई है।
> देव, भूत, पितर, करम खल काल, ग्रह,
> मोह पर दवरि दमानक सी दई है।
> हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि बारे ही तें,
> ओट राम नाम की ललाट लिख लई है।
> कुम्भज के किंकर विकल बूड़े गोखुरनि,
> हाय राम राम! ऐसी हाल कहुं भई है॥
> (बाहुक ३८)

इस बीमारी से छूटने के तुलसी ने अनेक उपाय किए। जंत्र, मंत्र, टोटका, ओषधि, पुण्य-पाठ सब कुछ किया पर बीमारी बढ़ती गई। बीमारी के बहुत बढ़ जाने पर निराश हृदय से तुलसीदासजी ने कहा था

> घेरि लियो रोगनि, कुजोगनि, कुजोगनिज्यो,
> बासर सजल घनघटा धुकिधाई है।
> बरसत बारि पीर जारिए जवासे जिस,
> रोष बिनु, दोष धूम, मूल मलिनाई है॥
> करुना निधान हनुमान महा बलवान,
> हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजे ते उड़ाई है।
> खायो हुतो तुलसी कुरोग राँड राकसनि,
> केसरी किशोर राखे बीर बरि आई है॥

मृत्यु कवि की मृत्यु के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता। जनश्रुति के अनुसार निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है

संवत सोरह सै असी, असी गङ्ग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजे सरीर॥

इसके अनुसार तुलसी की मृत्यु तिथि सं० १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी ठहरती है। लेकिन 'मूल गोसाई चरित' का लेखक इसी सं० को अशुद्ध मानते हुए कहता है कि मृत्यु तिथि श्रावण कृष्णा तृतीया थी और दिन शनिवार था-

संवत सोलहसै असी, असी गंग के तीर।
सावन स्याम तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

ज्योतिष गणना से यही तिथि ठीक है। टोडर के वंश मे अब तक इस तिथि को तुलसीदास के नाम पर सीधा दिया जाता है।

गोस्वामी जी के ग्रन्थ

गोस्वामी जी के १२ ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं, जिनमे ६ बड़े हैं और ६ छोटे। बड़े ग्रन्थ है— १ दोहावली, २–कवित्त रामायण या कवितावली, ३–गीतावली, ४–रामाज्ञा प्रश्न, ५–विनय पत्रिका, ६–रामचरित मानस।

छोटे ग्रन्थो के नाम हैं ·१–रामलला नहछू, २–वैराग्य संदीपिनी, ३–बरवै रामायण, ४–पार्वती मंगल, ५–जानकी मंगल ६–कृष्ण गीतावली।

डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने 'राम सतसई' को इनमे और सम्मलित कर सख्या १२ से १३ करदी है।

इन प्रामाणिक माने जाने वाले ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय हम नीचे दे रहे है।

दोहावली गोसाईं चरित के अनुसार इसका रचना काल सं० १६०० है किन्तु इसमे घटनाएँ सं० १६८० तक की वर्णित हैं। इसमें ५७३ दोहों का संग्रह है। दोहे भगवन्नाम-महात्म्य, वेदान्त, राजनीति, कलियुग-दुर्दशा, धर्मोपदेश आदि स्फुट विषयो पर हैं। इसमें वहुत से दोहे रामचरित मानस, रामाज्ञा, तुलसी सतसई और वैराग्य संदीपिनी के है। यह संग्रह ग्रंथ है।

कवित्त रामायण या कवितावली यह ग्रन्थ कवित्त, घनाक्षरी, सवैया और छप्पय मे है। इसके रचना काल का रुद्र वीसी और मीन सनीचरी के उल्लेख से पता चलता है कि कुछ छन्द सं० १६६६ के बाद लिखे गये होंगे। इसमे रामचरित मानस के साथ उत्तर काण्ड मे आत्मचरित और विनय की प्रधानता है। हनुमान वाहुक से देश की दशा का भी अनुमान होता है। छन्द संख्या ३२५ है।

गीतावली—यह ग्रन्थ राग-रागनियों मे है। इसे कवि ने क्रम से लिखा है। इसका रचना काल गोसाईं चरित के अनुसार सं० १६२८ है। कुछ विद्वान् १६४६ भी मानते है। भाषा व्रज है। इसमे सात काण्ड हैं। इसका विषय रामचरित है। वाल लीला, पालना, महादेव की लीला, हिंडोला, होली आदि का वर्णन कृष्ण लीला की भाँति है। इस में कोमल और मधुर भावों की व्यजना अच्छी हुई है। इस पर कृष्ण काव्य प्रभाव स्पष्ट है। छन्द संख्या ३२८ है।

कृष्ण गीतावली—इसकी रचना गीतावली की भाँति एक ही समय नहीं हुई वरन् समय समय पर रचे कृष्ण सम्बन्धी पदो

का संग्रह कर दिया गया है। सब पद ६१ है। कृष्ण लीला के कुछ स्थलो का वर्णन है। पहले बाल-चरित्र है और फिर क्रमशः गोपी उलाहना, ऊखल से बाँधना, गोवर्धन धारण, शोभा वर्णन गोपिका प्रीति, मथुरा गमन, गोपिका विलाप और भ्रमर गीत के प्रसंग हैं। इसकी भाषा भी व्रज है और यह गेय है।

रामाज्ञा प्रश्न- तुलसीदास जी ने इस ग्रन्थ को शकुन विचारने के लिये बनाया था। इसमें ४६-४६ दोहो के सात अध्याय है। छन्द संख्या ३४३ है। छन्द दोहा और भाषा अवधी है। रामचरित्र के बहाने शकुन कहा है लेकिन अध्याय रामायण के क्रम से नहीं है। गोसाईं चरित के अनुसार इसका रचना काल सं० १६६६ है।

विनयपत्रिका इसमे राग-रागनियो मे विनय के पद हैं। यह कलिकाल से दुखी होकर भगवान के दरबार में भेजी गई पत्रिका है! इसे गोस्वामी जी ने ग्रन्थाकार रचा है। कवि के दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारो पर इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। छन्द संख्या २८० है। इसकी भाषा संस्कृत गर्भित व्रज भाषा है। इसका रचना काल गोसाईं चरित के अनुसार स० १६२६ है परन्तु कुछ विद्वान १६६६ भी मानते है।

रामलला नहछू यह छोटा सा ग्रन्थ २० सोहर छन्दो का है। भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्त मे विशेषकर काशी, बिहार और तिरहुत प्रान्त में बरात के पहले चौक के समय नाइन के नहछू करने की रीति बहुत प्रचलित है। इसमें वही लीला गाई गई है। इसमे शृंगारिकता का कुछ अधिक पुट होने से रचना प्रारम्भिक मानी जाती है। इसकी भाषा ग्रामीण अवधी है, जो ग्राम्य गीतों मे बहुधा अवध की स्त्रियों के मुख से सुनाई देती

है। गोसाईं चरित के अनुसार इसका रचना काल सं० १६४३ है।

वैराग्य संदीपिनी यह ग्रन्थ दोहे चौपाइयो मे सन्त-महात्माओ के लक्षण, प्रशंसा और वैराग्य के उत्कर्ष वर्णन मे लिखा गया है। इसमे तीन प्रकाश है। पहला ३३ छन्दों का सन्त-स्वभाव वर्णन, दूसरा ९ छन्दों का सन्त महिमा वर्णन और तीसरा २० छन्दो का शान्ति वर्णन है। ऐसा लगता है कि घर छोड़ कर विरक्त होने के बाद ही गोस्वामी जी ने इसे लिखा हो। छन्द संख्या ६२ है। गोसाईं चरित के अनुसार रचना काल सं० १६६९ है।

बरवै रामायण यह बरवै छन्द में लिखा हुआ छोटा ग्रन्थ है। इसे कवि ने ग्रन्थरूप मे नहीं बनाया। समय-समय पर स्फुट बरवै बनाये हैं और पीछे से उनका संग्रह कर दिया गया है। अन्य ग्रन्थों की भाँति इसमे मगला चरण भी नहीं है। छन्द संख्या ६९ है। भाषा अवधी है। अलंकार अधिक है। गोसाई चरित के अनुसार रचना काल १६६९ है।

पार्वती मंगल इस ग्रन्थ में शिव पार्वती का विवाह वर्णित है। इस पर कालिदास के 'कुमार सम्भव' का प्रभाव दिखाई देता है। छन्द सख्या १६४ है। प्रधान छन्द मंगल तथा हरिगीतिका है। इसका रचना काल जनश्रुति सं० १६४३ है।

जानकी मंगल इसमे सीताराम के विवाह का वर्णन है, पार्वती मगल के समय की रचना है। प्रधान छन्द मंगल और हरिगीतिका का ही हैं। छन्द संख्या २१६ है भाषा अवधी है। इसकी कथा पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव दिखाई देता है।

राम-चरित-मानस इस ग्रन्थ की रचना तुलसीदासजी ने

संवत १६३१ चैत्र शुक्ला ६ (रामनवमी) मंगलवार को आरम्भ की इसमें लवकुश कथा को छोड़ कर शेश राम कथा सात काण्डों में वर्णित है। यह गोस्वामीजी का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। छन्द संख्या 'मानस' मयंक के अनुसार ५१०० चौपाई तथा कुल छन्द ६६६० है। छन्द, दोहा, चौपाई, छप्पय हरि गीतिका और भुजंग प्रयात आदि हैं। भाषा पश्चिमी अवधी है। यह सफल प्रबन्ध काव्य है। इस पर विस्तृत विचार अन्त में किया जायगा।

काव्य सौन्दर्य

तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी प्रतिभा, कल्पना और प्रकृति निरीक्षण तथा व्यावहारिक ज्ञान इतनी उच्चकोटि का है कि हिन्दी का कोई दूसरा कवि उनको नहीं पा सकता। इसका कारण यह है कि कविता उनके भक्त हृदय का प्रतिबिम्ब थी। उनका उद्देश्य राम गुण गान था। स्वयं उन्होंने कहा है "एहि महं रघुपति चरित उदारा, अति पावन पुरान स्रुति सारा।" राममय जीवन के कारण ही उन्होंने प्राकृत अथवा सांसारिक मनुष्यों की प्रशंसा के लिए अपनी वाणी का उपयोग कर उसे कलंकित नहीं किया। उन्होंने कहा— 'कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लाग पछताना'।

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' लिखने वाले भक्त कवि से यही आशा भी थी। लेकिन स्वान्तः सुखाय लिखने वाले इस कवि ने अपनी कविता में जनता के हित की इतनी बातें भरदी हैं कि उनका लेखा जोखा रखना भी आलोचकों को कठिन जान पड़ता है। 'रामचरित मानस' तथा अन्य ग्रन्थों में उनकी विचार धारा का अध्ययन करने से पता चलता है कि भारतीय संस्कृति की कोई ऐसी धारा नहीं है, जो कवि से छूट

गई हो। राम का शील, शक्ति और सौन्दर्य समन्वित आदर्श खड़ा करके तुलसी ने मृत हिन्दू जाति को जीवित कर लिया। उनके राम ब्रह्म है और 'विधि हरि शम्भु नचावन हारे' हैं। वे नर में नारायणत्व की सरस झाँकी दिखाने वाले हैं।

किसी कवि की प्रतिभा की परख के लिए आवश्यक है कि उसे काव्योपयोगी स्थलों की पहचान हो। तुलसी इस दृष्टि से श्रेष्ठ कवि कहते हैं। उन्होंने काव्योपयोगी मार्मिक स्थलों को चुनकर रखा है और जहाँ आवश्यकता पड़ी है वहाँ स्वयं कल्पना से कार्य लिया है। इस कारण उनके काव्य में सभी रसों का समावेश हो गया है।

शृङ्गार रस तुलसी के मर्यादावाद के कारण यह रस अधिक प्रस्फुटित नहीं हुआ है, फिर भी उसके संयोग वियोग दोनों पक्षों की अच्छी झाँकी कवि ने दी है। 'पुष्पवाटिका' प्रसंग से राम और सीता का स्नेह आरम्भ होता है। सीताजी के आभूषणों की झंकार से राम की मन:स्थिति क्या होती है, इसका चित्र कितनी कुशलता से कवि ने दिया।

कंकण, किंकिणि नूपुर धुनि सुनि।
कहतु लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्हीं॥

राम का हृदय विचलित हो रहा है, यह देखकर तुलसीदास उनके पवित्र चरण की मर्यादा यह कहकर रख लेते हैं कि जिसपर भगवान का मन लुभाया है, उससे उनका वैसा सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए क्योंकि रघुवंशी कभी कुपथ पर पैर नहीं रखते--

जासु विलोकि अलौकिक सोभा, सहज पुनीत मोर मन, छोभा।
सो सब कारन जान विधाता, फरकहिं सुभग अङ्ग सुन भ्राता ॥
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ, मन कुपंथ पग धरिअ न- काऊ।

'कवितावली' में विवाह के पश्चात का जो वर्णन है, वह शृंगार रस का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करता है--

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि वेदजुआ जुरि विप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलिगई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥

शृङ्गारी चेष्टाओं के वर्णन के लिए ग्राम बन्धुओं के यह पूछने पर कि साँवले शरीर वाले कौन हैं, सीता कितनी कुशलता के संकेत करती है

बहुरि वदन विधु अञ्चल ढाँकी, पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि, निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ॥

वियोग शृङ्गार का वर्णन भी मर्यादित है। राम के विरहोन्माद की ये पंक्तियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं--

हे खग हे मृग मधुकर स्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥

हनुमानजी ने राम का सीता को जो सन्देश दिया है, वह बड़ा मर्म स्पर्शी है

नाथ जुगल लोचन भरि बारी। वचन कहे कछु जनक कुमारी ॥

\+ + +

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बन्धु प्रन तारति हरना ॥

मन क्रम वचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ मोहि त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वाँस जरहि छन माँहि सरीरा॥
नयन स्रवहि जल निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

वीररस—मानस की कथा मूलतः वीर काव्य का विषय है, इसीलिए वाल्मीकि ने प्रत्येक काण्ड में वीरता के प्रसंगों की योजना की है परन्तु तुलसी ने कितने ही ऐसे प्रसंग हटा दिये हैं। परन्तु फिर भी वीर रस का अभाव नहीं है और उसके अच्छे चित्र दिए है। सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड मे वीर रस का अच्छा परिपाक है। जनक की सभा में लक्ष्मण के उत्साह पूर्ण वचनो से जिस प्रकार वीर रस मूर्तिमान होता है, वह देखिए—

सुनहुँ भानु कुल पंकज भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौ तुम्हार अनुसासन पाऊँ। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काचे घट जिमि डारो फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। कावापुरो पिनाक पुराना॥

अङ्गद रावण-संवाद तो वीर रस के भावो की खान है। 'कवितावली' में अङ्गद के पादरोपण। उत्साह का अच्छा चित्र है

रोप्यो पाँव पैज कै विचारि रघुवीर बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु रसकेतु है।
तज्यो धीर धरनि धरनिधर धसकतु,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महा बली बालि को दबत दलकतु भूमि,
तुलसी उधरि सिंधु मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि घट्टा पर्यो मदर को
आयो सोई काम पै करी जो कसकतु है॥

रौद्र वीरता पूर्ण प्रकार जो मे वीररस के साथ-साथ रौद्र भी आ जाता है। परशुराम के जनक की सभा मे आने पर लक्ष्मण-परशुराम-संवाद तथा कैकेयी के राजा दशरथ के वरदान न देने पर क्रोध के समय रौद्र रस के चित्र देखने को मिलते है। एक उदाहरण देखिए

माखे लखन कुटिल भइ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौहैं ॥
रघुवंसिन्ह मँह जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई ॥

भयानक और वीभत्स लङ्का-दहन के वर्णन मे इन दोनो रसों का परिपाक एक साथ देखने को मिल सकता है। एक उदाहरण 'कवितावली' से दिया जाता है। इनमें पहला भयानक का है दूसरा वीभत्स का से-

लागि लागि आगि, भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न संभारही।
छूटे बार बसन उघारे धूम धुंध अंध,
कहै बारे-बूढे 'बारि बारि' बार बारहीं ॥
हय हिहिनात, भागजात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात, तात, तौंसियत झौंसियत झारहीं ॥
ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे।
मूड़ के कमण्डलु, खपर किए कोरिकै।
जोगिनी झुटुंग झुण्ड-झुण्ड बनी तापसी-सी,
तीर-तीर बैठी, सो समर सरि खोरिकै ॥

सोनित सो सानि-सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूत नाथ,
हेरि-हेरि हँसति है हाथ हाथ जोरि कै॥

अद्भुत रस राम मे देवत्व की स्थापना मे तो अद्भुत रस की सृष्टि हुई ही है, तुलसीदासजी ने वैसे भी अद्भुत रस के स्थल ढूँढे है। हनुमानजी का पहाड़ लेकर आकाश मार्ग से द्रुतगति से जाना आश्चर्य का भाव जगाता है

लीन्हों उखारि पहार विसाल चल्यौ तेहि काल विलंब न लायो।
मारुत नन्दन मारुत को, मन को, खगराज को वेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहत तो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपियों धुकि धायो॥

करुण रस करुण रस के मानस मे कई प्रसंग हैं, जिनमें दशरथ मरण, रामबनवास, लक्ष्मण को शक्ति लगना प्रसिद्ध है। अभिषेक के समय वनवास बड़े दुख की बात है

कैकयि नन्दिनि मंद मति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह॥

दशरथ के मरण पर यह शोक अपनी चरमावस्था को पहुँच जाता है

लागति अवध भयावन भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन्ह विटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

हास्य-रस—नारद मोह में हास्य-रस की एक झलक देखिए

काहु न लखा सो चरित विसेखा। सो सरूप नृप कन्या देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न विलोकी भूली॥
पुनि-पुनि मुनि उकसहि अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसकाहीं॥

शान्त रस—सारी राम कथा का पर्यवसान ही शान्त रस में हुआ है। 'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड मे शुद्ध शान्त रस है। शृङ्गार प्रधान 'बरवै रामायण' का उत्तर-काण्ड तक शान्त रस से पूर्ण है। संसार की अनित्यता का एक उदाहरण विनय पत्रिका से यहाँ दिया जाता है

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु हीते।
सहसबाहु दसवदन आदि नृप, बचे न काल बलीते।
हम हम करि धनधाम संवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सबहीते।
अंतहु तोहि तजेंगे पामर! तू न तजै अबहीते॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घीते॥

वात्सल्य रस के वर्णन के लिए 'गीतावली' और 'रामचरित

मानस' के बालकाण्ड द्रष्टव्य है। यों तुलसी ने सभी रसों का समावेश अपने ग्रन्थों में सफलता पूर्वक किया है।

अलंकार यद्यपि तुलसीदासजी को चमत्कार प्रिय नहीं है और उन्होंने अलङ्कारों के लिए कविता नहीं की फिर भी उनके काव्य में अलङ्कार स्वतः आ गए है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में गोस्वामीजी ने अलङ्कारों का प्रयोग निम्नलिखित रूपों मे किया है

१—भावों के उत्कर्ष की व्यंजना में सहायक।

२ वस्तुओं के रूप (सौन्दर्य, भीषणता आदि) का अनुभव तीव्र कराने में सहायक।

३ गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक।

४ क्रिया का अनुभव तीव्र करने मे सहायक।

भावों के उत्कर्ष की व्यंजना मे सहायक अलङ्कारो के उदाहरण स्वरूप अलङ्कारों को दिया जाता है

> कहुक न है उजियरिया, निसि नहिं घाम।
> जगत जरत अस लागु, मोहि बिनु राम॥

यह निश्चयालङ्कार है, जो सीता के विरह-सन्ताप का उत्कर्ष दिखाने में सहायक है।

> तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास।
> वपुष वारिद वरषि छवि-जल, हरहु लोचन प्यास॥

यह 'रूपक' है, जिसमे रति भाव की अनन्यता दिखाई गई है।

> हृदय घाव मेरे पीर रघुवीरै।
> पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै॥

यहाँ 'असंगति' अलंकार द्वारा लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम की मानसिक व्यथा की व्यंजना की गई है।

रूप का अनुभव तीव्र कराने में सहायक अलंकारों में यह आवश्यक होता है कि प्रस्तुत और आलंकारिक वस्तु में बिंब-प्रतिबिम्ब भाव हो अर्थात कवि द्वारा लाई हुई वस्तु प्रस्तुत वस्तु से रूप रंग में मिलती-जुलती हो। इस दृष्टि से तुलसी की नीचे की उत्प्रेक्षा देखिए

सोनित छींट-छटा न जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छवि छूटी।
मानो मरक्कत सैल विसाल में फैलि चलीं बर बीर बहूटी॥

इसमें रक्त के छींटों और बीर बहूटियों में वर्ण और आकृति दोनों के विचार से बिंब-प्रतिबिंब भाव है।

सीता के रूप वर्णन में 'अतिशयोक्ति' अलंकार की छटा देखिए

जो छवि सुधा पयोनिधि होई, परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मन्दर सृंगारू, मथहि पानि-पंकज निज मारू॥

यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि संकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल॥

रूप सम्बन्धी अन्य उक्तियों के लिए दो उदाहरण और दिये जाते हैं

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसिदिन यह बिगसाइ॥(व्यतिरेक)

चंपक-हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ॥(उन्मीलित

क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकारों में अलंकार के लिये प्रयुक्त वस्तु और प्रस्तुत वस्तु का धर्म या तो एक होता है या अलग। अलग कहे जाने पर भी दोनों का धर्म समान होता है। नीचे लिखे रूपक में उपमेय और उपमान का एक ही धर्म बड़ी सुन्दरता से रखा गया है

नृपन केरि आसा निसि नासी, वचन-नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने, कपटी भूप उलूक लुकाने ॥

यहाँ केवल क्रिया का सादृश्य है, रूप आदि का नहीं। इस रूपक का उद्देश्य भावों का उत्कर्ष न होकर एक साथ इतनी भिन्न क्रियाओं का होना दिखाना है।

क्रोध से भरी कैकेयी राम को वन भेजने को उद्यत होकर खड़ी होती है। एक रूपक द्वारा तुलसीदास इसे कुशलता से व्यक्त करते हैं

अस कहि कुटिल भई उठ ठाढ़ी, मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी।
पाप पहार प्रकट भई सोई, भरी क्रोध-जल जाइ न जोई ॥
दोऊ कर कूल कठिन हठ धारा, भँवर कूबरी वचन प्रचारा।
ढाहत भूप रूप तरु मूला, चली विपति-वारिधि अनुकूला ॥

यह सांग रूपक कैकेयी के कर्म की भीषणता को भली भाँति सामने ला देता है। भाव और क्रिया की गहनता के लिए गोस्वामी जी बहुधा नदी या समुद्र के रूपकों का प्रयोग करते हैं।

गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार का उदाहरण देखिए

संत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहइ न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता, पर दुख द्रवै सो संत पुनीता ॥

'व्यतिरेक' द्वारा इस स्थल पर संतो के स्वभाव की विशेपता का स्पष्टीकरण किया है।

इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी के काव्य मे श्लेप, यमक, परिसंख्या जैसे कृत्रिमता लाने वाले अलकार भी मिलते है पर बहुत कम। वस्तुत. वे सिद्ध कवि थे और अलंकार का प्रयोग काव्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिये ही करते थे।

भापा और छन्द भापा पर तुलसीदास जी का जैसा अधिकार था वैसा और किसी हिन्दी कवि का नहीं। सबसे पहली वात तो यह है कि 'ब्रज' और 'अवधी' दोनों पर उनका समान अधिकार था। 'रामचरित मानस' में अवधी के पूर्वी और पश्चिमी दोनों रूप मिलते हैं। कवितावली, विनय पत्रिका और 'गीतावली' तीनों की भापा ब्रज है! पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू तीनों पूर्वी अवधी के ग्रन्थ हैं।

दूसरी विशेपता उनकी भापा की यह है कि वह प्रसङ्गानुकूल है। कहीं संस्कृत गर्भित है तो कहीं चलती हुई मुहाविरेदार। 'विनय पत्रिका के आरम्भ मे उनकी भापा संस्कृत गर्भित है। औरलोकोक्तियों से मुहाविरे युक्त भापा के उदाहरण देखिए

१ प्रसाद राम नाम के पसारि पाँय सूति हौ।
२ बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझिकै निवाजों रघुनाथ जू।
३ मांगि कै खैबो मसीत को सोइवो लैवो को एक न
दैबे को दोऊ।

तीसरी विशेपता यह है कि उनकी वाक्य रचना बड़ी व्यवस्थित है। एक भी शब्द भरती का नहीं है। थोड़े मे बहुत कहने की प्रकृति है। एक उदाहरण देखिए--

परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन पर गुन, नहिं दोष, कहौंगो ॥

चौथी विशेषता यह है कि तुलसी ने अधिकतर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। प्राकृत के प्रयोग भी देखने को मिलते है और कहीं-कहीं संस्कृत की 'मनसि' जैसी विभक्तियाँ भी हैं। फारसी अरबी शब्दों का भी प्रयोग तुलसी मे मिलता है। जैसे ग़रीबनिवाज, ग़नी, दाद, मिसकीनता आदि।

तात्पर्य यह है कि तुलसीदास जी की भाषा में स्वाभाविकता सरलता और प्रासादिकता पर्याप्त मात्रा है।

सामाजिक विचार

गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्म भी पूर्ण प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है। भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा आधार यही वर्णाश्रम धर्म है, जो समस्त विश्व मे उसके महत्व की प्रतिष्ठा करने वाला है। उनका रामचरित मानस परिवार, समाज और राष्ट्र तथा विश्वकी स्थिति रक्षा के लिए मनुष्य के कर्तव्य का निश्चय करने वाला काव्य है। माता-पिता का पुत्र के प्रति और पुत्रका माता पिता के प्रति, राजा के प्रति प्रजा का और प्रजा के प्रति राजाका, गुरु के प्रति, शिष्य का और शिष्य के प्रति गुरु का स्वामी के प्रति सेवक और सेवक के प्रति स्वामी का पति के प्रति पत्नीका और पत्नीके प्रति पतिका क्या कर्तव्य है, इसे यदि देखना होतो तुलसीका राम चरित मानस देखिए। साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के कर्तव्य का अलग-अलग विधान उन्होंने किया है। उन्होंने ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा की है और ब्राह्मण पूजाको भक्ति का साधन माना है

पुण्य एक जग मे नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्रपद पूजा ॥
सानुकूल तेहिपर मुनिदेवा। जो तजिकपट करइ द्विजसेवा ॥

लेकिन उनकी निरक्षरता और अज्ञानता के प्रति उन्हें चिढ़ भी कम नहीं है

विप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार सठ वृषली स्वामी।

इसी प्रकार उन शूद्रों की भी उन्होंने निन्दा की है जो यज्ञोपवीत धारण करते थे या ब्रह्मचर्चा करते थे

सूद्र द्विजनि उपदेसहिं ज्ञाना, मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुमते कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहिं डाटि ॥

तुलसीदासजी प्रत्येक वर्ण की मर्यादा के पक्षपाती थे। उच्छृङ्खलता उन्हें पसंद नहीं थी। राम-राज्य की उनकी कल्पना ही इस बात का प्रमाण है कि वे कैसे समाज के समर्थक थे। राम राज्य में सब अपना-अपना कर्तव्य करते हुए सुखी थे

बरणाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद-पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिकतापा, राम राज नहिं काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥
चारिहु चरन धर्म जगमाहीं, पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।
राम भगति रत नर अरु नारी, सकल परम गति के अधिकारी ॥

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा, सब सुन्दर सब विरुज सरीरा ।
नहिं दरिद्र कोई दुखीन दीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥

सब निर्दम्भ धरम रत पुनी, नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी, सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

कुछ लोग गोस्वामी को रूढ़िवादी और पुराणपन्थी समझते हैं। पर उनका लोकादर्श इससे परे की वस्तु है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में उनका लक्ष्य राजा प्रजा, उच्च नीच, धनी-दरिद्र, सबल-निर्बल, शासित-शासक, मूर्ख-पंडित, पति-पत्नी, गुरु शिष्य, पिता-पुत्र इत्यादि भेदों के कारण जो अनेक रूपात्मक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हैं उनके निर्वाह के अनुकूल मन (भाव) वचन और कर्म की व्यवस्था है।

उन पर स्त्री और शूद्रों की निन्दा का भी आक्षेप है। लेकिन उन्होंने उच्छृंखल स्त्रियों की ही निन्दा की है, जो उन जैसे मर्यादावादी के उपयुक्त ही है। 'जिमि स्वतंत्र होहि बिगरहि नारी' उन्होंने पथ भ्रष्ट स्त्रियों के लिए ही कहा है। जो महात्मा सीता को जगज्जननी के रूप में चित्र अंकित कर सकता है वह कभी स्त्रियों की ऐसी निन्दा नहीं कर सकता। उन्होंने स्त्री की निन्दा विरक्ति पथ में बाधक होने के कारण की है। फिर 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी' जैसे कथन उनके अपने सिद्धान्त वाक्य नहीं हैं। वे अन्य पात्रों द्वारा कहे गये हैं। उदाहरण के लिए यही उक्ति समुद्र द्वारा दीनता दिखाने के लिए कही गई है। शूद्रों को भी कर्तव्य हीन होने पर ही वे बुरा भला कहते हैं। ऐसी स्थिति में लोगों को समझना चाहिये कि तुलसीदास जी ने स्त्री और शूद्रों की निन्दा चिढ़कर नहीं की। एक विरक्त महात्मा के रूप में वे कल्याण पथ के लिए जो उचित समझते थे वही उन्होंने कहा है।

दार्शनिक विचार

गोस्वामी तुलसीदास जी के दार्शनिक-विचारों के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। कोई उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करता है और कोई विशिष्टाद्वैतवादी। सर्व श्री गिरधर शर्मा, डाक्टर बल्देव प्रसाद मिश्र, पं० श्रीधर पत आदि उन्हें अद्वैतवादी मानते हैं और सर्व श्री आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल 'वियोगी हरि, डाक्टर-रामकुमार वर्मा, बाबू गुलाबराय आदि उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं। स्वयं तुलसीदास जी अपने को किसी मत का नहीं मानते थे, इस बात का पता उनकी विनय पत्रिका के एक पद से चलता है। उस पद में गोस्वामी कहते हैं

> कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
> तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै॥

स्पष्ट ही वे इन मतमतान्तरों के भीतर पड़ना भ्रम समझते हैं और इनसे परे होकर आत्मसाक्षात्कार करने के पक्ष में हैं।

इतना होने पर भी दर्शन शास्त्र की मुख्य समस्याओं से वे उदासीन नहीं हैं। उन्होंने बराबर ब्रह्म, जीव, जगत, माया, आदि के सम्बन्ध में मत दिए हैं। ऐसे स्थलों पर कहीं तो वे अद्वैतवादी दिखाई देते हैं कहीं विशिष्टाद्वैतवादी और कहीं द्वैतवादी।

अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त है 'ब्रह्मसत्यं' जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापर अर्थात ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या है और जीव ब्रह्म ही है, दूसरा नहीं है। ब्रह्म निगुर्ण है और उसमे सजातीय (मनुष्य मनुष्य का) विजातीय (मनुष्य और गौ का) स्वगत (हाथ, सिर पैर आदि का) किसी प्रकार का भेद नहीं है।

अविद्या के कारण ही जीव ब्रह्म का भेद दिखाई देता है। जगत केवल माया के कारण भासित होता है। ईश्वर जीव की ही भाँति ब्रह्म का सगुण रूप है। तुलसीदासजी ने शांकर मत के प्रभाव के कारण ही संसार के सम्बन्ध मे मायावाद की पदावली का प्रयोग किया है :

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा।
यत्सत्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ॥

\+ + +

गो गो चर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेउ भाई ॥

\+ + +

सपने होइ भिखारि नृप, रङ्क नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥

\+ + =

सोवत सपने सहै संसृत संताप रे। बूडो मृगवारि, खायो जेवरी को साँप रे।

\+ + +

जगनथ वाटिका रही है फलि फूल रे, धूआँ के से धौर हर देखि मत भूलि रे।

\+ + +

उपर्युक्त उदाहरणों 'रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः', 'बूडो मृगवारि' 'धूआँ को सौ धौरहर' में संसार की असारता, दिखाई है।

विशिष्टाद्वैतवाद मे जीव, ब्रह्म और जगत तीनो की एकता मानी जाती है। यह अद्वैतवाद तो है पर इसमें विशिष्टता

यह है कि चित (जीव) और अचित (जड़ जगत) दोनों विशेषण रूप से ब्रह्म के साथ जुड़े हैं। एकाकार होने पर भी सूक्ष्मरूप से वे उसके साथ रहते हैं। स्थूल रूप में जीव और जगत दोनों ही सत्य हैं। इनका ब्रह्म सजातीय और विजातीय भेद से रहित है पर उसमे स्वगत भेद है। इसलिए जीव और जगत को ईश्वर का अंश कहना रामानुज का विशिष्टाद्वैत है। तुलसीदासजी इसीलिए सारे संसार को परमात्मा का रूप मानते हैं

सियाराममय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि जुगपानी॥

रामानुज के आधार पर ही अनेक स्थलो पर विशिष्टा-द्वैतवाद की बातें कहते हैं

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥
सो मायावश भयेउ गोसाईं। बंधेउ कीर मरकट की नाईं॥

\+ \+ \+

मायावस्य जीव अभिमानी। ईसवस्य माया गुन खानी॥
परवस जीव, स्ववस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्री कंता॥

राममय जगत को मानने वाले तुलसी के लिए जब संसार सत्य है तो वे कभी-कभी उसे झूठ क्यों बताते हैं, यह प्रश्न उठता है। हमारी सम्मति में इसका कारण यह है कि वे ज्ञान वैराग्य के लिए संसार से घृणा उत्पन्न कराने के लिए ही ऐसा करते हैं। उनके राम परब्रह्म हैं, जो अवतार लेते है। अगुण-सगुण में उन्होंने कोई भेद नहीं माना। शङ्कराचार्य के लिए सगुण भक्ति को लक्ष्य बनता है, जिससे ज्ञान रूपी लक्ष्य की प्राप्ति होती है पर तुलसी के लिए भक्ति ही साध्य है। तभी तो वे उस

मोक्ष को आदरणीय नहीं मानते जो शङ्कराचार्य के ज्ञान से मिलती है

अस विचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥

कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसीदासजी मे विशिष्टा। द्वैतवाद की ओर झुकाव अधिक है। वैसे हम उन्हें किसी वाद मे बाँधना उन जैसे समन्वयवादी के लिए अनुचित समझते है। वे तो सीधे सादे भक्त थे और अनन्यता उनकी स्वभावगत विशेषता थी, जिसमे वे आत्मज्ञान की प्राप्ति सम्भव मानते थे।

भक्ति-भावना

गोस्वामी तुलसीदासजी परम भक्त थे। भगवान राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य समन्वित आदर्श को खड़ा करके उस आदर्श के महत्व की अनुभूति करते करते वे लघुता की उस सीमा तक पहुँच गए थे, जहाँ एकाकार होने की स्थिति आ जाती है। उनकी भक्ति की यही सबसे बड़ी विशेषता है। वे कहते है

रामसो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो।
रामसो खरो है कौन मोसो कौन खोटो॥

भगवान की महत्ता की अनुभूति के कारण वे इतने दीन हो जाते हैं कि न होने पर भी अपने दुर्गुणो को बढ़ा-चढ़ा कर कहने मे उन्हें आनन्द आता है। जहाँ संसार के लोग अपने दोषों पर पर्दा डालते हैं, वहाँ तुलसीदास कहते है

जानतहू निज पाप जलधि जिय, जल सीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि सम रजतें निदरौं॥

इस प्रकार व्यक्तिगत अहङ्कार के नाश द्वारा वे प्रभु के निकट तक पहुँचना चाहते हैं।

अनन्यता उनकी भक्ति का प्राण है। केवल भगवान से अनन्य सम्बन्ध, अनन्य प्रेम ही उन्हें प्रिय है। चकोर, पपीहा और मीन जैसे चन्द्रमा, बादल और जल से प्रेम करते हैं वैसे ही वे भक्त भगवान से प्रेम करते हैं। चातक तो उनके प्रेम का प्रतीक ही है।

एक भरोसो एक बल, एक आस, विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥

लेकिन इस अनन्यता मे कोई लेन-देन का भाव नहीं है, यह निष्काम भक्ति है। स्वर्ग-अपवर्ग की चाह से भक्ति करने वाले को कोई फल नही मिलता। वे कहते हैं--

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहहुँ निरवानु।
जन्म जन्म सिय राम पद, यह वरदान न आन॥

तुलसीदास जी की भक्ति सेवक सेव्य भाव की है, इसीलिये वे कहते हैं

सेवक सेव्य भाव बिनु, भवन तरिय उरगारि।

यहीं यह भी देख लेना चाहिए कि तुलसी ने भक्ति और ज्ञान की क्या संगति मानी है। उन्होंने दोनो में भेद नहीं माना और कहा है

ज्ञानहिं भक्तिहि नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव संभव खेदा।

लेकिन ज्ञान का पथ कृपाण की धार है जहाँ से गिरने मे देर नहीं लगती। इसलिए भक्ति मार्ग सुगम है। लेकिन ज्ञान के बिना भक्ति असंभव है और जानना प्रभु कृपा बिन असंभव है-

जाने विनु न होइ परतीती। विनु परतीति होइ नहि प्रीती॥

+ + +

सोइ जानहु जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहिं होइ जाई।

ऐसी भक्ति की प्राप्ति के लिए तुलसी दास जी ने श्रद्धा-विश्वास, निश्छलता और लोकसेवा, विवेक और वैराग्य, नाम जप और सत्संग आदि साधनों का विधान किया है। उनकी इस प्रकार की शक्ति द्वारा जो भगवान का सान्निध्य मिलता है वह ज्ञान द्वारा प्राप्त मोक्ष से ऊपर है। योगी की भाँति माया मोह से छूट कर अविचल हरि भक्ति की प्राप्त ही तुलसी का ध्येय है। उनकी भक्ति भावना लोक कल्याण की संजीवनी से युक्त होने के कारण संसारी और असंसारी दोनो के काम की है यही उसकी विशेषता है।

हिन्दी साहित्य में तुलसी का स्थान

समस्त हिन्दी साहित्य और उसके प्रतिनिधि कवियो पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। हिन्दी मे वे सबसे पहले सफल प्रबन्ध काव्य लेखक हैं। चन्द की 'पृथ्वीराज रासो' और जायसी का 'पद्मावत' और केशव की 'रामचन्द्रिका' उनके रामचरितमानस की समता मे नहीं ठहर सकते। भाषा, भाव और विचार प्रगति के साथ कथा के भीतर मार्मिक स्थलो का जो चुनाव

तुलसी ने किया है, अन्य प्रबन्धकार उस तक नहीं पहुँच सके। रामकाव्य के समकक्ष ही कृष्णकाव्य भी है, पर कृष्णकाव्य में शृङ्गार की इतनी भरमार है कि वह मर्यादा की सीमा पार कर गया है और हमारे गृहस्थ धर्म के प्रतिकूल जा पड़ता है। एकांगिक प्रेम का प्रतिपादन ही कृष्णकाव्य की विशेषता है, लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कर्तव्य मिश्रित प्रेम का आभास वहाँ नहीं, वह तो 'रामचरित-मानस' में ही है।

तुलसी के काव्य में सम्प्रदायिकता का अभाव है इसीलिए उसमें किसी सम्प्रदाय विशेष के दार्शनिक या धार्मिक विचारों का समर्थन नहीं किया गया है। इसके विपरीत उसमे समन्वय-वाद की प्रवृत्ति है। यही कारण है प्रत्येक सम्प्रदाय का अनुयायी मानस का आदर करता है। इतना होने पर भी उसमे रामभक्ति का जो प्रतिपादन है, वह कहीं भी अशक्त या शिथिल नहीं है। रामब्रह्म है, सीता शक्ति और यह जगत है उनकी लीला। संसार माया है और माया राम की दासी,है जो उनके संकेत पर मनुष्य को नचाती है। इसी माया के भ्रम मे जीव सुख-दुख पूर्ण जन्म-मरण के बन्धन मे बँधता है। यह माया नष्ट हो सकती है राम की कृपा से और राम की कृपा प्राप्त हो सकती है केवल भक्ति द्वारा। यह तुलसी का मत है और यही उनके समस्त काव्य का प्रतिपादन है। इस भक्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता बता कर उन्होंने उसे और भी पुष्ट कर दिया है। ज्ञान से पूर्ण भक्ति ही जीव के कल्याण के लिए आवश्यक तत्व है।

हिन्दी मे वे ही ऐसे कवि है, जिन्होंने अपने समय की दो प्रमुख प्रचलित भाषाओं ब्रज और अवधी में समान

की स्थिति रक्षा और व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व इन सब के कर्त्तव्यों का जो विवेचन तुलसी ने किया है वह न कोई कवि कर सका न कर सकेगा। यह तुलसी की विशेषता है, जो उन्होंने जनता का कवि और उसका सच्चा चित्रकार सिद्ध करती है। घोर संकटकाल में समाज को मरने से बचा लेना और उसे नव जीवन देकर खड़ा कर देना कोई साधारण प्रतिभा या कार्य नहीं है। यही कारण है कि वे हिन्दू संस्कृति के उद्धारक के रूप में युग-युग तक प्रगट रहेंगे।

रामचरितमानस

रामचरितमानस गोस्वामी जी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। भाषा, भाव, रस, सिद्धान्त, प्रबन्ध-कल्पना तथा लोक-कल्याण भावना किसी भी दृष्टि से देखे यह ग्रन्थ अद्वितीय है। राजप्रासाद से लेकर एक कुटी तक इसका समान आदर है। उत्तरी भारत के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे यह ग्रन्थ इतनी गह-राई से समाया हुआ है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी एक न एक चौपाई कह ही देगा। काव्य की दृष्टि से इसमें लोकोत्तर आनन्द देने की क्षमता है, भक्ति की दृष्टि से इसमें शान्ति की संजीवनी है और नीति की दृष्टि से इसमें समाज को आदर्श पथ पर लेजाने का संकेत है। इसमे सब प्रकार के व्यक्ति अपने मनके अनुकूल समाधान पा लेते हैं इसीलिए यह सबका कण्ठ-हार है। इसके सम्बन्ध मे विदेशी विद्वानो और देशी महापुरुषो ने जो सम्मतियाँ दी है, वे इसके महत्व को प्रतिपादित करने वाली है। उनमे से कुछ यहाँ दी जाती है--

"हिन्दी साहित्य मे गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान निस्सन्देह सर्वोच्च है और उनकी रामायण न सिर्फ भारत मे ही बल्कि सारे ससार मे सुप्रसिद्ध है। वह यथार्थत ख्याति के योग्य है।" 'के' हिन्दी लिटरेचर पृष्ठ ४७

"हिन्दुओ के धार्मिक सिद्धान्तो और उनकी संस्कृति का सर्वोच्च सुन्दर चित्र जैसा कि रामायण मे मिलता है, वैसा

शायद अन्य किसी ग्रन्थ मे न होगा ।" --'मैकफी'-- सैन्ट्रल थीम पृष्ठ १६

"तुलसीकृत रामायण का उत्तर भारत की करोड़ों पढ़ी, और वे पढ़ी जनता में इतना अधिक मान और प्रचलन है कि जितना सामान्य ईसाइयों में बाइबिल का नहीं है ।" ग्रियर्सनएनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स। १६२१ पृष्ठ ४७१

"गोस्वामी जी की रचना जन समाज के लिये इतनी अनुकूल पड़ी है कि उनके वचनों को जनता कहावतों की तरह इस्तेमाल करती है । इतना ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक दृष्टि से भी उनकी रचना बड़ी उत्कृष्ट है । वर्तमान समय में हिन्दुत्व के अन्य उनके उपदेशों का जो प्रभाव है, वह अन्य किसी का नहीं । अन्य साम्प्रादायिक साधुओं की तरह उन्होने अपना कोई निज का सम्प्रदाय नहीं चलाया तथापि उनको भारत की तमाम हिन्दू जनता अपने चरित्र निर्माण और धार्मिक कार्यों मे एक बहुत ही आप्त और प्रामाणिक पथ प्रदर्शन मानती है ।"

'कारपोंटर' थियालॉजी ओफ तुलसीदास पृष्ठ २

तुलसीदास की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और मैं उसे अद्वितीय ग्रन्थ मानता हूँ ।

महात्मा गान्धी

रामायण को काव्य कहना उसका अपमान करना है । उसमें तो भक्ति रस का प्रवाह बहता है, जो जीवन को पवित्र कर देता है ।

मदनमोहन मालवीय

रामचरित-मानस की कथा का स्रोत सर्व प्रथम भगवान शङ्कर के हृदय मे उमड़ा था । उनसे लोमश ऋषि को यह प्रसाद

मिला, जिसे उन्होंने भुशुण्डिजी को अधिकारी मान कर दे दिया। भुशुण्डिजी ने इसे ऐसा सरल और सरसरूप दिया कि स्वयं शङ्करजी उसके रसास्वादन के लिए मराल बन कर रहे और गरुड़जी को अपनी शंकानिवृत्ति के लिए वहाँ भेजा। फिर शङ्करजी ने यह कथा पार्वतीजी को सुनाई। उसके पश्चात् योगी याज्ञवल्क्य ने भुशुण्डि से उस कथा को लेकर ज्ञानी मुनि भारद्वाज को सुनाई। वही गुरु परम्परा से तुलसीदास को मिली। तुलसीदासजी ने सुजनों के लिए वही कथा ग्रन्थ रूप मे रच दी। ग्रन्थ रूप मे पहुँचते-पहुँचते इस मानसरोवर के चार घाट हो गए। प्रथम घाट शङ्कर-पार्वती संवाद है, दूसरा काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद है, तीसरा याज्ञवल्क्य-भारद्वाज सवाद है और चौथा तुलसीदास तथा सुजनो का संवाद है

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा, बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।
सोइ सिव काकभुशुण्डिहिं दीन्हा, रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेइ सन जागबलिक मुनि पावा, तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।
\+ \+ \+ तथा
मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहि तसि बालपन, तब अति रहेऊँ अचेत॥

यह ग्रन्थ गोस्वामीजी ने कब और कहा बनाया, इसका पता नहीं चलता। कारण, अन्त मे समय और स्थान नहीं लिखा है, केवल महिमा लिखकर समाप्त कर दिया है। अनुमान यह किया जाता है कि गोस्वामीजी ने इसे अरण्यकाण्ड तक अयोध्या में और किष्किन्धा से उत्तर तक काशी में बनाया क्योंकि और कभी काशी का वर्णन न करके किष्किन्धा के उत्तर में लिखा है—

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानि कर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइअ कसत॥

इस कथा का आदि स्रोत 'वाल्मीकि रामायण' है। आदि रामायणकार होने के कारण गोस्वामीजी ने इन कवीश्वर की वन्दना भी की है। इसके साथ ही कवीश्वर ने हनुमान की भी वन्दना की है क्योंकि हनुमन्नाटक से भी उन्होंने सहायता ली है। उनके अतिरिक्त योगवशिष्ठ, अध्यात्म-रामायण, महारामायण, भुशुण्डि रामायण, याज्ञवल्क्य रामायण, भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, भरद्वाज रामायण, प्रसन्न राघव, अनर्घ्य राघव, रघुवंश आदि अनेक ग्रन्थों की छाया रामचरितमानस में है। लेकिन अधिक प्रभाव काकभुशुण्डि रामायण का है। वहीं से 'रामचरितमानस' नाम भी लिया गया है। काकभुशुण्डजी कहते हैं

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा, रामचरितमानस तब भाखा।

वाल्मीकि रामायण से रामचरितमानस की कथा में कई स्थानों पर भेद है। मुख्य भेद ये हैं

१--वाल्मीकि ने परशुराम का मिलना विवाह के पीछे लौटते समय लिखा है पर गोस्वामीजी ने धनुष टूटने के बाद ही।

२ जयन्त की कथा वाल्मीकि ने सीता के मुख से सुन्दरकाण्ड में हनुमान के मुख से कहलाई है, जिसमें हनुमान रामचन्द्रजी को सीता के मिलने का प्रमाण दें पर मानस में उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

३ वाल्मीकि ने सेतु बाँधने पर शिव की स्थापना नहीं लिखी है केवल लङ्का से लौटते समय पुष्पक विमान पर से रामचन्द्र सीता को समुद्रतट दिखाते हुए कहते हैं कि 'यहाँ पर सेतु बाँधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था।'

४ वाल्मीकि रामायण में युद्धकाण्ड में ही भरत-मिलाप,

राज्याभिषेक आदि सब कुछ हो जाता है।

५ मानस में, 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार कौवे का सीता के चरण में चोंच मारना लिखा है पर वाल्मीकि ने स्तनान्तर में।

वस्तुतः मूलकथा वाल्मीकि पर आधारित है पर छोटे-छोटे ब्योरे अन्य ग्रन्थों से लिए गए हैं। उदाहरण के लिए वर्षा और शरद के वर्णन श्रीमद्भागवत से लिए गए हैं। छोटी-छोटी अनेक उक्तियाँ तो संस्कृत ग्रन्थों से मथकर निकाली गई हैं। पर तुलसी की मौलिकता यह है कि उन्होंने उन्हें इस प्रकार सजा कर रख दिया है कि वे उनकी अपनी जान पड़ती हैं।

इस ग्रन्थ रत्न के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'बालकाण्ड' के आदि, 'अयोध्याकाण्ड' के मध्य और 'उत्तरकाण्ड' के अन्त की गम्भीरता की थाह बहुत डूबने से मिलती है। यह सत्य भी है क्योंकि मानव जीवन की दशा के अनुसार बालकाण्ड में आनन्दोत्सव की भरमार है, 'अयोध्या' में गार्हस्थ्य की विषम स्थिति का दर्शन होता है, 'अरण्य', 'किष्किन्धा' और 'सुन्दर' में कर्म और उद्योग के समय की सूचना देते हैं और 'लङ्का' में विजय और विभूति का चित्र दिखाई पड़ता है।

'रामायण' तुलसीदास ने भाषा में की थी। इस पर संस्कृतज्ञ बड़े रुष्ट हुए थे और उन्होंने इसकी प्रामाणिकता में सन्देह किया था। उस समय यह निश्चय हुआ कि रात को रामायण विश्वनाथजी के मंदिर में रखी जाय। यदि विश्वनाथजी की सही हो जाय तो उसे प्रामाणिक अन्यथा अप्रामाणिक माना जाय। कहते हैं कि सवेरे देखा गया तो विश्वनाथजी ने उस पर अपनी स्वीकृति लिखदी थी।

अयोध्या काण्ड

'रामचरित मानस' के सात काण्डों में अयोध्या काण्ड को तुलसीदास जी ने बड़े मनोयोग से लिखा है। इस काण्ड में प्रायः आठ चौपाइयों पर एक दोहा और प्रत्येक पच्चीस दोहों पर एक एक हरिगीतिका छन्द और एक एक सोरठा दिये हैं। इस काण्ड का नाम तुलसीदास जी ने 'अवधकाण्ड' रखा था जो कालान्तर में अयोध्या काण्ड होगया।

इस काण्ड के आरम्भ मे तीन श्लोको मे शिव और राम की स्तुति है। उनके आगे एक दोहे में गुरु-पद-पद्म की वंदना है। इसके पश्चात् अयोध्या की विभूति का वर्णन किया गया है। तदनन्तर जो कथा चलती वह इस प्रकार है

राजा दशरथ राम को युवराज पद देने के लिये वशिष्ठ के सम्मुख अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। अभिषेक की समस्त तैयारियाँ होने लगती हैं। देवताओ को जैसा कि स्वाभाविक है, इससे अप्रसन्नता होती है और वे सरस्वती से विनय करते हैं कि किसी प्रकार इस मंगल प्रसंग मे विघ्न पड़े। सरस्वती मंथरा को प्रेरणा करती है और मंथरा कैकेयी की मति को फेर कर उसे कोप भवन मे भेजती है। राजा दशरथ कोपभवन मे उसे मनाने जाते हैं। कैकेयी उनसे वरदान माँगती है। राजा वरदान तो देते हैं। पर उसके पश्चात् उनकी गति मृत प्राय व्यक्ति जैसी हो जाती है, विलाप से राजप्रासाद शोक की मूर्ति बन जाता है। प्रात-काल सुमन्त राजा दशरथ के पास कोपभवन मे जाते है

सीता गङ्गा तट पर पहुँचते है। वहीं निषाद राज से भेंट होती है। उसका आतिथ्य स्वीकार कर राम प्रातःकाल गङ्गा पार हो जाते हैं। सुमन्त निराश होकर पुर की ओर लौट आते हैं। राम प्रयाग पहुँचते हैं और वहाँ से भरद्वाज मुनि के आश्रम मे पहुँचकर उनका आतिथ्य स्वीकार करते हैं।

मुनिराज के आश्रम से चार ब्रह्मचारी मार्ग दिखलाने के लिए चलते हैं। वे उन्हें यमुनातट तट पहुँचा देते हैं। यहाँ एक तपस्वी उनके साथ हो लेता है और भगवान राम निषाद को विदा कर देते हैं। मार्ग में लोगों को अमित आनन्द देते हुए और उनका आदर भाव स्वीकार करते हुए वे वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचते हैं, यहाँ अनेक प्रकार से सत्संग होता है। चलते समय राम ने महर्षि से पूछते है कि हमारे रहने के लिए स्थान बताइए। महर्षि इस प्रश्न के उत्तर के रूप में चौदह स्थान राम के निवास के लिए बताते हैं। इन स्थानों के बहाने राम का निवास पवित्र आचरण वाले महात्माओं के हृदय में बताते हैं। यह प्रसंग एक भक्ति के अधिकारी व्यक्तियों की ओर संकेत करता है। इसके अनन्तर महर्षि वाल्मीकि भगवान से चित्रकूट निवास करने के लिए कहते हैं।

चित्रकूट पर भगवान पर्णकुटी बना कर रहते हैं। वनवासी उनका आतिथ्य करते हैं। वहाँ भगवान का सम्बन्ध परिवार का सा हो जाता है और अयोध्या के निर्वासित सम्राट वन में भी राज्य सुख-सा भोगते है।

भगवान राम को चित्रकूट में बसा कर तुलसीदास फिर अयोध्या लौटते है। राम से विदा होकर सुमन्त के अयोध्या लौटने तथा दशरथ से सीता का सन्देश कहने और विलाप करते हुए दशरथ की मृत्यु का वर्णन करते हैं। दशरथ भी मृत्यु से

राज परिवार की क्या स्थिति होती है, प्रजा किस प्रकार शोक ग्रस्त हो जाती है, वशिष्ठ किस प्रकार सबको समझाते है आदि बातो का समावेश किया है। भरत को ननिहाल से बुलाया गया। कैकेयी हर्षित होकर सवाद सुनाती है। भरत इस पर कैकेयी को बुरा भला कहते है और कौशल्या के सम्मुख जाकर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करते है। यह स्थल भरत के चरित्र को स्पष्ट करने वाला है। कौशल्या भी भरत को अपने राम की ही भाँति प्यार से समझाती-बुझाती है और उसे निर्दोष समझती है। इसके पश्चात दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया होती है। एक सभा द्वारा बड़े-बड़े लोग प्रयत्न करते है कि भरत राज लेलें परन्तु भरत इस प्रस्ताव को ठुकरा कर राम को चित्रकूट से लौटा लाने की प्रतिज्ञा करते हे। दूसरे ही दिन अपने सभी रानियों, वशिष्ठादि गुरुजनो को लेकर पहले दिन तमसा, दूसरे दिन गोमती और तीसरे दिन सई के तट पर विश्राम कर शृङ्गवेरपुर पहुँचते हैं। ससैन्य भरत को आते देख निषाद के मन मे शङ्का होती है और वह समझता है कि भरत राम से युद्ध करने जा रहे है पर जब उसे पता चलता है कि उनका उद्देश्य कुछ और है तब वह प्रेम से भरत के गले लगता है। उसके पश्चात भरत निषाद के साथ गगा पार कर भरद्वाज के आश्रम मे पहुँचते है। वहाँ विश्राम कर चित्रकूट को चल देते है। राम जब भरत के आगमन की बात करते है तो लक्ष्मण वैसे ही शङ्का करते है जैसी कि निषाद ने की थी पर राम उन्हे समझाते है। भरत के अलौकिक भ्रातृस्नेह और राम के भरत पर प्रेम का पता चलता है। सब भाई परस्पर गले मिलते है। सारी अयोध्या ही वहाँ आ गई जान पड़ती है। भरत अपने हृदय की बात कहते है और राम से लौटने का आग्रह करते है। राम अनेक प्रकार से भरत को

समझाते हैं। धर्म, नीति, कर्तव्य आदि का उपदेश देते हुए राम भरत को लौटने को तैयार कर लेते है। कैकेयी की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है, वह ग्लानि से गलने लग जाती है। अन्त में भरत पादुका लेकर लौटते हैं। उन्हें सिहासन पर पधारते है। स्वयं तपस्या रत रहते हैं। उस पृथ्वी पर नहीं जो राम की है वरन नीचे कुछ गहराई तक उसे खोद कर व्रत-नियम में लीन वे राम के लौटने तक प्रभु के राज्य का संचालन करते हैं।

विशेषताएँ

अयोध्याकाण्ड की स्थिति रामायण मे वही है, जो शरीर में प्राण की होती है। जिस प्रकार प्राण के निकल जाने से शरीर निर्जीव हो जाता है उसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के निकल जाने से रामायण मे कुछ भी नहीं रह जाता। इस काण्ड की विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिए एक पूरी पुस्तक का लिखा जाना अपेक्षित है। यहाँ स्थानाभाव से हम संकेत में ही इस काण्ड की विशेषताओं पर विचार करेंगे। इसकी विशेषताएँ ये हैं

१ रामचरित-मानस पारिवारिक जीवन का काव्य है। इस काण्ड में एक परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त जीवन का अच्छा चित्र उपस्थित किया गया है। पिता, माता, भाई, स्त्री, दासी आदि परिवार के सभी प्रमुख सदस्यों के चरित्र का उद्‌घाटन इसी काण्ड से होता है। दशरथ जैसा चक्रवर्ती राजा अपनी सबसे छोटी रानी कैकेयी के वशीभूत होकर किस प्रकार अपने सबसे बड़े पुत्र को युवराज बनाते-बनाते निर्वासन की

आज्ञा दे देता है, यह देखकर स्त्रैण राजाओं की विषम स्थिति का पता चलता है। लेकिन पुत्र के वन जाते ही प्राण त्याग से अपने पुत्र प्रेम का परिचय जब वह देता है तो उसके प्रति सहानुभूति होने लगती है और उसका स्त्री का कहना मानना कर्तव्य-पालन की कसौटी जैसा जान पड़ने लगता है। कौशल्या के हृदय का पूरा-पूरा चित्र हमे अयोध्याकाण्ड में ही मिलता है। उसे राम को वन भेजते समय तनिक भी संकोच नहीं होता। मन की व्यथा को वह दबा लेती है, यह उसकी विशेषता है। राम ही नही अपनी उस पुत्रवधू को भी वह वन भेज देने मे गौरव अनुभव करती है, जो कभी हिंडोले और पलँग से नीचे नहीं उतरी। कौशल्या के साथ ही सुमित्रा का भी चरित्र आता है। वह अपने पुत्र लक्ष्मण को सहर्ष वन जाने की आज्ञा दे देती है और कह देती है 'पुत्रवती जुवती जग सोई, रघुपति भगति जासु सुत होई।' वह सबसे अधिक उपेक्षित और दीन पात्र है। वह अपने पुत्र को जाते समय उपदेश देती है

राग रोष ईरिषा मद मोहू। जनि सपनेहु इनके बस होहू॥
सकल प्रकार विकार विहाई। मन क्रम वचन करहे सेवकाई॥

कैकेयी रामायण का तामसी वृत्ति का पात्र है। वह पति द्वारा सबसे अधिक सम्मानित है। इसलिए स्वेच्छाचारिणी और मानाभिमानिनी है। वह उद्धत स्वभाव का और हठी है। अयोध्याकाण्ड में उसका चरित्र एक स्वार्थी और उद्धत स्वभाव की नारी का है, जो पति की मृत्यु पर भी नहीं सँभलती और अपने पुत्र के आने पर उससे राज्य के लिए कहती है। वह इतनी निष्ठुर है कि वरदान की बात पर दशरथ के उदास होने पर निस्संकोच कह उठती है

दुइनि होइ इक संग भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू॥
दानि कहाउब अरु कृपिनाई। होइ कि खेम कुशल रौताई॥

यही नहीं राम को पिता की इस अनुचित आज्ञा के पालन के लिए प्रोत्साहित करते हुए भी लज्जित नहीं होती

पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन अघ अजसु न होई॥
तुमसम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादर कीन्हे॥

मंथरा के रूप में एक कुटिल दासी का चित्र तुलसी के कुशल मनोविज्ञान-वेत्ता होने का प्रमाण है। यद्यपि कैकेयी के हृदय में राम को युवराज बनते देख ईर्ष्या का बीज पड़ चुका था। तथापि कैकेयी उसका कारण बना दी गई है। उसकी बुद्धि को देवताओं के कहने से सरस्वती ने फेर दिया था, जिसके कारण वह कैकेयी को वरदान माँगने पर विवश कर सकी। मंथरा का चरित्र बड़ा कलापूर्ण है।

राम एक आज्ञाकारी पुत्र है। अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट होने वाले हैं पर पिता की स्थिति देख कर स्वयं वन जाने की तैयारी कर देते हैं। कर्तव्य-पालन उनका प्राण है। सीता और लक्ष्मण को भी समझाते हैं कि वे रह कर माता-पिता की सेवा करें। कौशल्या तक को वन से शीघ्र लौट आने का आश्वासन देकर समझा-बुझा देते है। उनमें क्रोध नाम को भी नहीं हैं। अयोध्याकाण्ड से उनके शील-स्वभाव का पता दो स्थानों से चलता है एक तो निषाद मिलन और दूसरा चित्रकूट मे वन-वासियों के सम्पर्क में आने पर उनके साथ घुलमिल जाने पर। राम में सर्वत्र गम्भीरता और विशालता ही तुलसी ने रखी है।

लक्ष्मण के प्रभु भक्त होने और उनके क्रोधी स्वभाव का पता भी अयोध्याकाण्ड से चलता है। वन जाने के लिए हठ करने में उनकी प्रभु भक्ति और चित्रकूट मे भरत को आते देख

कर क्रोधोन्मादक में चाहे जो कहना उनके क्रोधी स्वभाव का सूचक है।

भरत अयोध्याकाण्ड ही नहीं समस्त रामचरितमानस का आदर्श चरित्र है। राम के चरित्र में शूर्पणखाँ को कुरूप करने और बालि को छल से मारने का दोष है, सीता पर मारीच वध के समय लक्ष्मण के प्रति सन्देश का आक्षेप है, लक्ष्मण पर आवेशपूर्ण कार्य करने का लांछन है, पर भरत पर कोई आरोप लग ही नही सकता। राज्य न लेना, माता को बुरा-भला कहना, चित्रकूट जाना, पादुका लाना, स्वयं जमीन के नीचे तप करके समय बिताना, कल्पना से परे की सी बातें है पर भरत ने यह सब किया है। अयोध्याकाण्ड मे भरत के चरित्र मे तुलसी राम और भरत की तुलना करते हुए तुलसीदास लिखते है

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तपु तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सबविधि भरत सराहन जोगू॥

यह एक गृहस्थ परिवार का सच्चा चित्र है, जो अयोध्या-काण्ड मे दिया है, गुरुजन, मन्त्री, बनवासी आदि के स्वाभाविक प्रेम का चित्रण भी इसके साथ अयोध्याकाण्ड की विशेषता है।

अयोध्याकाण्ड में तुलसीदास की भावुकता चरम सीमा को पहुँच गई है। करुण रस तो इसमे सर्वत्र भरा है। कैकेयी के वरदान माँगने पर दशरथ की दशा का वर्णन करते समय, राम के भवन पहुँचने तक राजा की परिस्थिति का चित्रण करते

समय पुत्र द्वारा वन जाने का समाचार सुनकर माता कौशल्या के हृदय के आघात का दिग्दर्शन कराते समय और उसके राम को आज्ञा देकर वन भेजते समय के शब्दों में करुण रस की धारा बह उठती है। सुमन्त के असफल लौटने, दशरथ के निराश होने, सुमन्त्र के लाए सन्देह का प्रभाव दिखाने, पुत्र के वनवास और पति की मृत्यु के बाद कौशल्या के भरत से मिलने के दृश्यों में तुलसी का हृदय द्रवित हो उठा है। चित्रकूट के आश्रम में जनक के समाज के प्रवेश समय की विषाद-मग्न भाव दशा को गति में और भी सुन्दर ढंग से रखा है। ग्राम-वन्धुओं के मन में राम, लक्ष्मण और सीता को वन मार्ग से जाते देख जो भाव उठे हैं उन्हें चित्रित करके तो तुलसी ने अपनी भावुकता का सबसे अच्छा परिचय दिया है।

वीर-रस के दो स्थल अयोध्याकाण्ड में हैं एक तो निषाद के भरत की सेना को देखकर युद्ध की तैयारी करने में और दूसरा चित्रकूट में लक्ष्मण का भरत पर सन्देह करके उग्र वचन में। तुलसी ने दोनों ही स्थानों पर वीरता की व्यंजना की है।

भय, वीभत्स और शान्त रस के भी स्थल अयोध्याकाण्ड में हैं। मंथरा द्वारा सुझाए राम राज्य के भयंकर परिणाम से काँपती कैकेयी का चित्रण यद्यपि संकेत में किया गया है, पर है वह बड़ा सजीव। वीभत्स का चित्र वहाँ है, जहाँ भरत कैकयी को डाटते है 'वर माँगत मुह भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।' शान्त-रस वहाँ है जहाँ अयोध्यावासी राम के वन जाने पर व्याकुल होते है या जब सुमन्त राम को वन पहुँचा कर वापस लौटते समय निराशा प्रगट करते हैं।

यों लगभग सभी रसों की व्यंजना इस अयोध्याकाण्ड में है।

३ अयोध्याकाण्ड में तुलसीदासजी ने स्वभाव-चित्रण, बड़ी कुशलता से किया है। इन सब प्रकार के चित्रणों के लिए उन्होंने कल्पना का उपयोग किया है। ऐसा करते समय अनेक अलङ्कारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। स्वभाव-चित्रण में उत्प्रेक्षा दृष्टान्त और उदाहरण, भाव-चित्रण में उत्प्रेक्षा, रूपक, वस्तु तथा कार्य-व्यापार-चित्रण में उत्प्रेक्षा, घटना-चित्रण में रूपक अलङ्कार का विशेष प्रयोग किया गया है। इन सबका एक-एक उदाहरण दिया जाता है।

१ स्वभाव-चित्रण

सहज सरल रघुबर वचन, कुमति कुटिल कर जान।
चलइ जोंक जल बक्र गति, जद्यपि सलिल समान॥

उदाहरण अलङ्कार

२ भाव चित्रण

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न सोई॥
दोउ वर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी वचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरुमूला। चली विपति वारिधि अनुकूला॥

- सांग रूपक से पुष्ट वस्तूत्प्रेक्षा

३ वस्तु तथा कार्य-व्यापार-चित्रण

सखष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु धरी गति लेई॥

+ + +

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ वीर रस सोवत जागा॥

वस्तूत्प्रेक्षा

४ घटना-चित्रण

नगर सकल वनु गह्वर भारी। खग मृग विकल सकल नरनारी॥
विधि कैकयी निरातिनि कीन्ही। जेहिं दवदुसह दसहुँदिस दीन्ही॥
सहिन सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥

रूपक

४ अयोध्याकाण्ड से तुलसीदास जी के आध्यात्मिक विचारों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। वाल्मीकि द्वारा राम-भक्ति की चौदह भूमिकाएँ भी अयोध्याकाण्ड में बताई गई है, जो सब से अधिक महत्व की हैं। वे भूमिकाएँ ये है

१ कथा श्रवण मे अनुराग।

२ स्वरूपा सक्ति अर्थात राम के पारमार्थिक स्वरूप का साक्षात्कार करने की प्रबल आकांक्षा।

३--यश-कीर्ति सक्ति।

४ पूजा सक्ति।

५ ब्राह्मण सेवा।

६--माया से मन का निर्लिप्त रखना।

७ लोक निरपेक्षा युक्त अनन्य बुद्धि।

८--वासना हीन तथा व्यापक प्रेम।

९- सर्वस्व भाव अर्थात् समस्त प्रेम सूत्रों को एकत्र कर उन्हें राम में स्थापित करना।

१०--लोक संग्रह वृत्ति।

११ स्वदोपानुभूति तथा भगवत-भक्ति।

१२--वैराग्य वृत्ति अर्थात् सांसारिक सम्बन्धों से ममता का परित्याग।

१३--तन्मयता।

१४ शुद्ध प्रेमासक्ति।

इसके अतिरिक्त राम के स्वरूप पर भी अयोध्याकाण्ड में अच्छा प्रकाश डाला गया है। लक्ष्मण ने निषाद को जो उपदेश दिया है, उससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि राम साक्षात ब्रह्म है पर वे भक्तों के उद्धार के लिए नर रूप में साकार हुए है–

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहि वेदा॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहि जग जाल॥

वाल्मीकि भी यही कहते हैं--

चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेउ संत सुर काजा। करउ कहहु जस प्राकृत राजा॥

राम की लीलाओं का रहस्य ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नहीं जानते क्योंकि वे इनको भी अपनी माया से नचाने

चाले हैं

जग पेखन तुम देखनि हारे। विधि हरि संभु नचावन हारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहिं को जानन हारा॥

सीता आदि शक्ति हैं। यही ब्रह्म की 'माया' और 'मूल प्रकृति' है, जिससे जगत का उद्भव, उसकी स्थिति और उसका संहार हुआ करता है--

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

संसार की सभी वस्तुएँ माया जनित होने से मिथ्या है--

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाक पति होई।
जागे हानि न लाभ कछु, अस प्रपंच जिय जोइ॥

५--तुलसीदासजी की वर्णन शक्ति और निरीक्षण शक्ति का पता भी अयोध्याकाण्ड से चलता है। कवि चित्र सा खड़ा करता चलता है। राम ने सीताजी को वन की भयंकरता का जो दिग्दर्शन कराया है, वह इस दृष्टि से बड़ा सजीव है। चित्रकूट में नदी के किनारे एक भूखण्ड का चित्र रूपक द्वारा कितनी सुन्दरता से अङ्कित है, यह देखिए--

लखन दीख पय उतर करारा। चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठ भेरी॥

इसी प्रकार जनक समाज के चित्रकूट पहुँचने, ग्रामवासियों की आन्तरिक दशा का मान कराने और चित्रकूट की सभा का वर्णन करने में तुलसी की कला का उज्ज्वल रूप दिखाई देता है।

६ नाटकीय तत्व की दृष्टि से अयोध्याकाण्ड बड़ा महत्व का है। आरम्भ में अत्यधिक प्रसन्नता पूर्ण वातावरण में इसका आरम्भ होता है, शीघ्र ही विषाद का वातावरण पैदा होता है और राम वन जाते हैं। भरत के आने पर फिर कौतूहल जागता है और पाठक सोचता है कि अब कुछ शान्ति मिलेगी पर भरत भी राम को लेने चल देते है। राम को लाने की प्रतिज्ञा करके जाने वाले भरत की आशा के साथ पाठक के हृदय में भी आशा जगती है, पर राम नहीं आते तब फिर पाठक निराश हो जाता है। अयोध्या में आकर पादुकाओं से आज्ञा लेकर राज्य चलाने वाले भरत के आदर्श के प्रति नतमस्तक पाठक का हृदय आश्चर्य चकित रह जाता है और त्याग की धरोहर लेकर प्रसन्न होता है। आरम्भ से अन्त तक कितने ही प्रकार के भावों में डूबता-उतराता पाठक यहाँ तक पहुँचता है। वस्तु संगठन का ऐसा अद्वितीय रूप रामायण में और कहीं नहीं है।

७ कैकेयी और मंथरा के चरित्रों द्वारा स्त्री जाति के सामान्य चरित्र का उद्घाटन करके तुलसी ने अयोध्याकाण्ड में एक और भारी तत्व भर दिया है। मनोविज्ञान के सूत्रों की भाँति निम्न पंक्तियाँ जनता के सम्मुख नारी के स्वभाव का चित्र रख देती हैं

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगम अगाधु दुराऊ॥
निज प्रति बिंब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

काहि न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जगु काल न खाइ॥

सारांश यह है कि अयोध्याकाण्ड मे तुलसीदासजी ने समाज धर्म, ज्ञान, काव्य आदि सभी का सार भर दिया है। रामचरित-मानस के पात्रों का विकास इसी काण्ड से हुआ है अतः यह अन्य काण्डों की अपेक्षा विशेष महत्व रखता है। तुलसी का भावुक हृदय इसमे द्रवित होकर बह निकला है।

॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ॥

अयोध्याकाण्ड
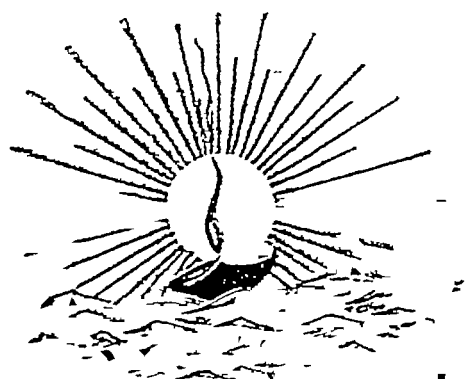
(भूमिका व टिप्पणी सहित)

श्लोक—वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्॥
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्॥१॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमङ्गलप्रदा॥२॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥३॥

दो० श्रीगुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुरु सुधारि।
वरनउँ रघुवर विमल यश, जो दायकु फल चारि॥१॥

जब तें राम व्याहि घर आए, नित नव मंगल मोद वधाए।
भुवन चारि दस भूधर भारी, सुकृत मेघ वरषहिं सुख वारी॥
रिधि सिध संपति नदी सुहाई, उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।
मनिगन पुर नरनारि सुजाती, सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती॥
कहि न जाय कछु नगर विभूती, जनु एतनिअ विरंचि करतूती।
सब विधि सब पुर लोग सुखारी, रामचंद मुख चंदु निहारी॥
मुदित मातु सब सखी सहेली, फलित विलोकि मनोरथ वेली।
राम रूप गुन सीलु सुभाऊ, प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ॥

दो० सब के उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेस।
आपु अछत युवराज पद, रामहिं देउ नरेसु॥२॥

एक समय सब सहित समाजा, राजसभा रघुराजु बिराजा।
सकल सुकृत मूरति नरनाहू, राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे, लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं, भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥
मंगलमूल राम सुत जासू, जो कछु कहिय थोर सबु तासू।
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा, बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
श्रवन समीप भए सित केसा, मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा।
नृप जुवराजु राम कहुँ देहू, जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

दो० यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ॥ ३॥

कहइ भुआलु सुनिय मुनि नायक, भए रामु सब बिधि सब लायक
सेवक सचिव सकल पुरवासी, जे हमारे अरि मित्र उदासी॥
सबहिं रामु प्रिय जेहि बिधि मोही, प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही
बिप्र सहित परिवार गोसाईं, करहिं छोहु सब रौरहि नाईं॥
जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं, ते जनु सकल बिभव बस करहीं
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें, सबु पायउँ रज पावनि पूजें॥
अब अभिलाष एक मन मोरे, पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू, कहेउ नरेसु रजा सु देहू।

दो० राजन राउर नाम जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार॥ ४॥

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी, बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी।
नाथ रामु करियहिं जुवराजू, कहिय कृपा करि करिय समाजू॥
मोहि अछत यहु होइ उछाहू, लहहिं लोग सब लोचन लाहू।
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं, यह लालसा एक मन माहीं॥
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ, जेहि न होइ पाछे पछिताऊ।
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए, मंगल मोद मूल मन भाए॥

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं, जासु भजनु बिनु जरनि न जाही।
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी, राम पुनीत प्रेम अनुगामी॥

दो० बेगि, बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब, राम होंहिं जुबराजु॥ ५॥

मुदित महीपति मंदिर आए, सेवक सचिव सुमंतु बोलाए।
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए, भूप सुमंगल बचन सुनाए॥
प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू, रामहिं राज देहु युवराजू॥
जौं पाँचहि मत लागै नीका, करहु हरषि हिय रामहि टीका।
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी, अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी, जियहु जगतपति बरिस करोरी।
जग मंगल भल काजु बिचारा, बेगिय, नाथ न लाइय बारा॥
नृपहिं मोदु, सुनि सचिव सुभाषा, बढ़त बौड़ जनु लही सुसाखा।

दो०- कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ॥ ६॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी, आनहु सकल सुतीरथ पानी।
औषध मूल फूल फल पाना, कहे नाम गनि मंगल नाना॥
चामर चरम बसन बहु भाँती, रोम पाट पट अगनित जाती।
मनिगन मंगल वस्तु अनेका, जो जग जोग भूप अभिषेका॥
बेद बिदित कहि सकल बिधाना, कहेउ रचेहु पुर बिबिध बिताना।
सफल रसाल पूगफल केरा, रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥
रचहु मंजु मनि चौकैं चारू, कहहु बनावन बेगि बजारू।
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा, सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

दो० ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिवर बचन सबु, निज निज काजहि लाग॥७॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा, सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा।
बिप्र साधु सुर पूजत राजा, करत राम हित मंगल काजा॥

सुनत राम अभिषेक सुहावा, बाज गहागह अवध बधावा ।
राम-सीय-तन सगुन जनाए, फरकहिं मंगल अंग सुहाए ॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं, भरत-आगमनु-सूचक अहहीं ।
भए बहुत दिन अति अवसेरी, सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं, इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ।
रामहि बंधु सोच दिन राती, अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु ।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥८॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए, भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ।
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं, मंगल कलस सजन सब लागीं ॥
चौकें चारु सुमित्रा पूरी, मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ।
आनँद-मगन राम महतारी, दिए दान बहु बिप्र हँकारी ॥
पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा, कहेउ बहोरि देन बलिभागा ।
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू, देहु दया करि सो बरदानू ॥
बार बार गनपतिहि निहोरा, कीजै सफल मनोरथ मेरा ।
गावहिं मंगल कोकिलबयनीं, बिधुबदनीं मृग-सावक-नयनीं ॥

दो० राम-राज-अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि ।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि ॥ ९ ॥

तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए, रामधाम सिख देन पठाए ॥
गुर-आगमनु सुनत रघुनाथा, द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने, सोरह भाँति पूजि सनमाने ।
गहे चरन सिय सहित बहोरी, बोले रामु कमल कर जोरी ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू, मंगल मूल अमंगल दमनू ।
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती, पठइअ काज नाथ असि नीती ॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू, भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ।
आयसु होइ सो करौं गोसाईं, सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं ॥

दो० सुनि सनेह साने वचन मुनि रघुबरहि प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस ॥ १० ॥

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ, बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ।
भूप सजेउ अभिषेक समाजू, चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥
राम करहु सब संजम आजू, जौं बिधि कुसल निबाहै काजू ।
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ, राम हृदयँ अस बिसमय भयऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई, भोजन सयन केलि लरिकाई ।
करनबेध उपबीत बिआहा, संग संग सब भयउ उछाहा ॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू, बंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू ।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई, हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥

दो० तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद ।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघु-कुल कैरव-चंद ॥ ११ ॥

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना, पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना ।
भरत आगमनु सकल मनावहिं, आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं ॥
हाट बाट घर गली अथाईं, कहहिं परस्पर लोग लोगाईं ।
कालि लगन भलि केतिक बारा, पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक सिंघासन सीय समेता, बैठहिं रामु होइ चित चेता ।
सकल कहहिं कब होइहि काली, बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा, चोरहि चदिनि राति न भावा ।
सारद बोलि बिनय सुर करहीं, बारहिं बार पाँय लै परहीं ॥

दो० बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥१२॥

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती, भइउँ सरोज बिपिन हिमराती ।
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी, मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥
बिसमय हरष रहित रघुराऊ, तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ।
जीव करम बस दुख-भागी, जाइअ अवध देवहित लागी ॥

वार वार गहि चरन सँकोची, चली विचारि विवुध मति पोची ।
ऊँच निवासु नीचि करतूती, देखि न सकहिं पराइ विभूती ॥
आगिल काजु विचारि वहोरी, करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी ।
हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई, जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई ॥
दो०--नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥ १३ ॥
दीख मंथरा नगरु बनावा, मंजुल मंगल वाज वधावा ।
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू, राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥
करइ विचारु कुबुद्धि कुजाती, होइ अकाजु कवनि विधि राती ।
देखि लागि मधु कुटिल किराती, जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ॥
भरत मातु पहिं गइ विलखानी, का अनमनि हसि कह हँसि रानी
ऊतरु देइ न लेइ उसासू, नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरे, दीन्ह लखन सिख असमन मोरे ।
तवहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि, छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥
दो०--सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु ।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥१४॥
कत सिख देइ हमहि कोउ माई, गालु करब केहि कर बलु पाई ।
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू, जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥
भयउ कौसिलहि विधि अति दाहिन, देखत गरब रहत उर नाहिन ।
देखहु कस न जाइ सब सोभा, जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
पूतु विदेस न सोचु तुम्हारे, जानति हहु वस नाहु हमारे ।
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई, लखहु न भूप कपट चतुराई ॥
सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी, झुकी रानि अव रहु अरगानी ।
पुनि अस कवहुँ कहसि घर फोरी, तव धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥
दो० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विसेपि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि ॥ १५ ॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही, सपनेहु तो पर कोपु न मोही।
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई, तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई, यह दिनकर कुल रीति सुहाई।
राम तिलकु जौं साँचेहु काली, देउँ माँगु मन भावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी, रामहिं सहज सुभाय पिआरी।
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी, मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू, होहुँ राम सिय पूत पुतोहू।
प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे, तिन्ह के तिलक छोमु कस तोरे॥

दो० भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरप समय बिसमय करसि कारन मोहि सुनाउ॥ १६॥

एकहिं बार आस सब पूजी, अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
फोरइ जोगु कपारु अभागा, भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई, ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई।
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती, नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा, बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी, चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा, अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।
ताते कछुक बात अनुसारी, छमिय देबि बड़ि चूक हमारी॥

दो०—गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर-बुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतियानि॥ १७॥

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही, सबरी गान मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी, रहसी चेरि घात जनु फाबी॥
तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ, धरेऊँ मोर घरफोरी नाऊँ।
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली, अवध साढ़साती तब बोली॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी, रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी।
रहा प्रथम अब ते दिन बीते, समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

भानु कमल-कुल पोषनि-हारा, बिनु जर जारि करइ सोइ छारा ।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी, रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥

दो० तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ॥ १८ ॥

चतुर गंभीर राम महतारी, बीचु पाइ निज बात सँवारी ।
पठए भरतु भूप ननिअउरें, राम मातु मत जानब रउरें ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके, गरबित भरत मातु बल पी के ।
सालु तुम्हार कौसिलहि माई, कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी, सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ।
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई, राम तिलक हित लगन धराई ॥
यहु कुल उचित राम कहुँ टीका, सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ।
आगिलि बात समुझि डरु मोही, देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥

दो० रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१९

भावी बस प्रतीति उर आई, पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ।
का पूछहु तुम्ह अबहुँ न जाना, निज हित अनहित पसु पहिचाना ।
भयउ पाख दिन सजत समाजू, तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे, सत्य कहें नहिं दोष हमारे ।
जौं असत्य कछु कहब बनाई, तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ, तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ।
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी, भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई, तौ घर रहहु न आन उपाई ।

दो० कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिला देब ।
भरत बंदिगृह सेइहहिं, लखन राम के नेब ॥२०॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी, कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ।
तन पसेउ कदली जिमि काँपी, कुबरी दसन जीभ तब चाँपी ॥

कहि कहि कोटिक कपट कहानी, धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी।
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू, जिमि न नवइ फिरि उकठ कुकाठू॥
फिरा करम प्रिय लागि कुचाली, बकिहि सराहइ मानि मराली।
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी, दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने, कहउँ न तोहि मोह बस अपने।
काह करौं सखि सूध सुभाऊ, दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

दो०—अपने चलत न आजलगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि, दैवँ दुसह दुख दीन्ह॥२१॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई, जिअत न करबि सवति सेवकाई।
अरि बस दैउ जिआवत जाही, मरनु नीक तेहि जीव न चाही॥
दीनबचन कह बहु बिधि रानी, सुनि कुबरीं तियमाया ठानी।
अस कस कहहु मानि मन ऊना, सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना॥
जेइँ राउर अति अनभल ताका, सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका।
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि, भूख न बासर नींद न जामिनि॥
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची, भरत भुआल होहिं यह साँची।
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ, हैं तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥

दो० परउँ कूप तव बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़ कस न करब हित लागि॥२२॥

कुबरीं करि कबुली कैकेई, कपट छुरी उर पाहन टेई।
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे, चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी, देति मनहुँ मधु माहुर घोरी।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं, स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती, मागहु आजु जुड़ावहु छाती।
सुतहि राजु रामहि बनवासू, देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति रामसपथ जब करई, तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई।
होइ अकाजु आजु निसि बीतें, बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥

दो० बड कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु ।
काजु सवाँरहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु ॥२३॥
कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी, बार बार बडि बुद्धि बखानी ।
तोहि सम हितु न मोर संसारा, बहे जात कइ भइसि अधारा ॥
जौं बिधि पुरब मनोरथ काली, करउँ तोहि चखपूतरि आली ।
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई, कोपभवन गवनी कैकेई ॥
बिपति बीजु बरषारितु चेरी, भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ।
पाइ कपटजलु अंकुर जामा, बर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥
कोपसमाजु साजि सब सोई, राजु करत निज कुमति बिगोई ।
राउर नगर कोलाहलु होई, यह कुचालि कछु जान न कोई ॥
दो० प्रमुदित पुर नरनारि सब, सजहिं सुमंगलचार ।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार ॥२४॥
बालसखा सुनि हिय हरषाहीं, मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं ।
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी, पूछहिं कुसल खेम मृदुबानी ॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई, करत परसपर राम बडाई ।
को रघुबीरसरिस संसारा, सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥
जेहि जेहि जोनि करमबस भ्रमहीं, तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ।
सेवक हम स्वामी सिय नाहू, होउ नात यह ओर निबाहू ॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू, कैकय सुता हृदय अति दाहू ।
को न कुसंगति पाइ नसाई, रहइ न नीचमते चतुराई ॥
दो० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेह ।
गवनु निठुरतानिकट किय जनु धरि देह सनेह ॥२५॥
कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ, भयबस अगहुँड परइ न पाऊ ।
सुरपति बसइ बाँहबल जाके, नरपति सकल रहहिं रुख ताके ॥
सो सुनि तियरिस गयउ सुखाई, देखहु काम प्रताप बडाई ।
सूल कुलिस असि अँगवनि हारे, ते रतिनाथ सुमनसर मारे ॥

समय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ, देखि दसा दुखु दारुन भयऊ।
भूमिसयन पटु मोट पुराना, दिये डारि तन भूषन नाना॥
कुमतिहि कसि कुबेषता फावी, अन-अहिवातु-सूच जनु भावी।
जाइ निकट नृपु कह मृदुबानी, प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥
छंद केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंगभामिनि बिषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपतिभवितव्यता-बस काम कौतुक लेखई॥
सो० बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गज गामिनि निज कोप कर॥२६॥
अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा, केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू, कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी, काह कीट बपुरे नर नारी।
जानसि मोर सुभाउ बरोरू, मनु तव आनन चंद चकोरू॥
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे, परिजन प्रजा सकल बस तोरे।
जौं कछु कहउँ कपटु करि तोही, भामिनि राम-सपथ-सत मोही॥
बिहँसि माँगु मनभावति बाता, भूषन सजहि मनोहर गाता।
घरी कुघरी समुझि जिय देखू, बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू॥
दो०— यह सुनि मन गुनि सपथ बडि बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद॥२७॥
पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी, प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी।
भामिनि भयउ तोर मन भावा, घर घर नगर अनंदबधावा॥
रामहिं देउँ कालि जुबराजू, सजहि सुलोचनि मंगलसाजू।
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू, जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई, चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई।
लखी न भूप कपट चतुराई, कोटि कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई॥

यद्यपि नीतिनिपुन नरनाहू, नारिचरित जलनिधि अवगाहू।
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी, बोली बिहँसि नयन मुह मोरी॥
दो०—मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेउ बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥२८॥
जानेउँ मरम राउ हँसि कहई, तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई।
थाती राखि न मागेहु काऊ, बिसरि गयो मोहि भोर सुभाऊ॥
झूठेहु हमहि दोषु जनि देहू, दुइ कै चारि मागि मकु लेहू।
रघु-कुल-रीति सदा चलि आई, प्रान जाहु बरु बचनु न जाई॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा, गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये, बेद पुरान बिदित मुनि गाये॥
तेहि पर राम सपथ करि आई, सुकृत-सनेह-अवधि रघुराई।
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली, कुमत-कुबिहग-कुलह जनु खोली॥
दो० भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग-समाजु।
भिल्लनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु॥२९॥
सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का, देहु एक बर भरतहि टीका।
मागउँ दूसर बर कर जोरी, पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापसबेष बिसेषि उदासी, चौदह बरिस रामु बनबासी।
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू, ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा, जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू, दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूदि दोउ लोचन, तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।
मोर मनोरथु सुर-तरु फूला, फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेई, दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई।
दो० कवने अवसर का भयउ गयउ नारिबिस्वास।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि जतिहि अबिद्यानास॥३०॥
एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा, देखि कुभाँति कुमतिमनु माखा।

भरत कि राउर पूत न होही, आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥
जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे, काहे न बोलहु बचनु सँभारे ।
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं, सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं ॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू, तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ।
सत्य सराहि कहेहु बरु देना, जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा, तनु धनु तजेउ बचनपनु राखा ।
अति-कटु-बचन कहति कैकेई, मानहुँ लोन जरे पर देई ॥
दो० धरम-धुरं-धर धीर धरि नयन उघारे राय ।
सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठाय ॥३१॥
आगे दीखि जरति रिस भारी, मनहुँ रोष तरवारि उघारी ।
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई, धरी कूबरीं सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा, सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ।
बोलेउ राव कठिन करि छाती, बानी सविनय तासु सोहाती ॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती, भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती ।
मोरे भरतु रामु दुइ आँखी, सत्य कहउँ करि शंकर साखी ॥
अवसि दूत मैं पठउब प्राता, ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ।
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई, देउँ भरत कहँ राजु बजाई ॥
दो० लोभु न रामहिं राज कर बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति ॥ ३२ ॥
राम-सपथ-सत कहउँ सुभाऊ, राममातु कछु कहेउ न काऊ ।
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछे, तेहि ते परेउ मनोरथु छूछे ॥
रिस परिहरु अब मंगल साजू, कछु दिन गये भरत जुबराजू ।
एकहि बात मोहि दुखु लागा, बर दूसर असमंजस माँगा ॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा, रिस परिहास कि साँचेहु साँचा ।
कहु तजि रोषु रामअपराधू, सब कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू, अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ।

जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला, सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥
दो० प्रिया हास रिस परिहरहि माँगु बिचारि बिबेकु ।
जेहि देखउँ अब नयन भरि भरत-राज-अभिषेकु ॥३३॥
जिअइ मीन वरु वारिविहीना, मनि बिनु फनिक जिअइ दुखदीना ।
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना, जीवनु राम-दरस-आधीना ।
सुनि मृदुवचन कुमति अति जरई, मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया, इहाँ न लागिहि राउरि माया ।
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं, मोहि न बहुत प्रपंच सुहाहीं ॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने, राममातु भलि सब पहिचाने ।
जस कौसिला मोर भल ताका, तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥
दो०—होत प्रातु मुनिबेषु धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिय मन माहिं ॥ ३४ ॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी, मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ।
पाप पहार प्रगट भइ सोई, भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिनहठ धारा, भवर कूबरी-वचन प्रचारा ।
ढाहत भूपरूप तरुमूला, चली बिपतिवारिधि अनकूला ॥
लखी नरेस बात सब साँची, तियमिसु मीचु सीस पर नाँची ।
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी, जनि दिन कर-कुल होसि कुठारी ॥
माँगु माथ अबही देउँ तोही, रामबिरह जनि मारसि मोही ।
राखु राम कहु जेहि तेहि भाँती, नाहिं त जरिहि जनमु भरि छाती ॥
दो० देखी ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ ।
कहत परम आरतवचन राम राम रघुनाथ ॥ ३५ ॥
ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता, करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ।
कंठु सूख मुख आव न बानी, जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी ॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई, मनहुँ धाय महुँ माहुरु देई ।

जौं अंतहु अस करतब रहेऊ, माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥
दुइ कि होइ एक समय भुआला, हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ।
दानि कहाउब अरु कृपनाई, होइ कि खेम कुसल रौताई ॥
छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहूं, जनि अबला जिमि करुना करहू ।
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी, सत्यसंध कहु तृनसम बरनी ॥

दो०— मरमबचन सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर ॥ ३६ ॥

चहत न भरत भूपतहि भोरे, बिधिबस कुमति बसी जिय तोरे ।
सो सबु मोर पापपरिनामू, भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू ॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई, सब गुनधाम राम प्रभुताई ।
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई, होइहि तिहुँ पुर रामबड़ाई ॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ, मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ।
अब तोहि नीक लाग करु सोई, लोचनओट बैठु मुंहु गोई ॥
जब लगि जिअउं कहउं करजोरी, तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ।
फिरि पछतैहसि अंत अभागी, मारसि गाइ नहारुहि लागी ॥

दो० परेउ राउ कहि कोटिबिधि काहे करसि निदानु ।
कपटसयानि न कहति कछु जागति मनहुं मसानु ॥ ३७ ॥

राम राम रट बिकल भुआलू, जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ।
हृदय मनाव भोरु जनि होई, रामहिं जाइ कहइ जनि कोई ॥
उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुर, अवध बिलोकि सूल होइहि उर ।
भूपप्रीति कैकइ-कठिनाई, उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा, बीना-बेनु संख-धुनि द्वारा ।
पढहिं भाट गुन गावहिं गायक, सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ॥
मंगल सकल सुहाहिं न कैसे, सहगामिनिहिं बिभूषन जैसे ।
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू, रामदरस लालसा उछाहू ॥

दो०— द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि ।
जागे अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ॥३८॥
पछिले पहर भूपु नित जागा, आजु हमहि बड़ अचरजु लागा ।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई, कीजिय काज रजायसु पाई ॥
गये सुमंत्र तब राउर पाहीं, देखि भयावन जात डेराहीं ।
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा, मानहुँ बिपति बिषाद-बसेरा ।
पूछे कोउ न ऊतरु देई, गये जेहि भवन भूप कैकेई ।
कहि जय जीव बैठ सिरु नाई, देखि भूपगति गयउ सुखाई ॥
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ, मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ ।
सचिव सभीत सकड़ नहि पूछी, बोली असुभभरी सुभछूछी ॥
दो० परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु ।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ॥३९॥
आनहु रामहिं बेगि बोलाई, समाचार तब पूछेहु आई ।
चलेउ सुमंत्र रायरुख जानी, लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥
सोच बिकल मग परइ न पाऊ, रामहिं बोलि कहिहि का राऊ ।
उर धरि धीरज गयउ दुआरे, पूछहिं सकल देखि मनमारे ॥
समाधानु करि सो सबही का, गयउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका ।
राम सुमंत्रहि आवत देखा, आदर कीन्ह पितासम लेखा ॥
निरखि बदनु कहि भूपरजाई, रघु-कुल-दीपहिं चलेउ लेवाई ।
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं, देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥
दो० जाइ देखि रघु-बंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥४०॥
सूखहि अधर जरहिं सब अंगू, मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ।
सरुख समीप देखि कैकेई, मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ, प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ।
तदपि धीर धरि समउ बिचारी, पूछी मधुर बचन महतारी ॥

मोहि कहु मातु तात-दुख-कारनु, करिय जतनु जेहि होइ निवारनु ।
सुनहु राम सब कारन एहू, राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहिं दुइ वरदाना, माँगेउ जो कछु मोहिं सुहाना ।
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू, छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥
दो० सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥ ४१ ॥
निधरक बैठि कहइ कटुबानी, सुनत कठिनता अति अकुलानी ।
जीभ कमान बचन सर नाना, मनहुँ महिपु मृदु-लच्छ-समाना ॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू, सिखइ धनुपबिद्या बरबीरू ।
सब प्रसंग रघुपतिहि सुनाई, बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसुकाइ भानु कुल भानू, रामु सहज--आनंद-निधानू ।
बोले वचन बिगत सब दूषन, मृदु मंजुल जनु बागविभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी, जो पितु मातु-बचन-अनुरागी ।
तनय मातु-पितु-तोषनि-हारा, दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥
दो०--मुनिगन मिलनु बिसेषि वन सबहि भाँति हित मोर ।
तहि मह पितुआयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥४२॥
भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू, बिधि सबविधि मोहि सनमुख आजू ।
जौं न जाउ वन ऐसेहु काजा, प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा ॥
सेवहिं अरंडु कलपतरु त्यागी, परिहरि अमृत लेहि बिषु माँगी ।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥
अब एक दुखु मोहि बिसेखी, निपट बिकल नरनायकु देखी ।
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी, होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
राउ धीर गुन-उदधि-अगाधू, भा मोहिं ते कछु बड़ अपराधू ।
ता तें मोहिं न कहत कछु राऊ, मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥
दो०--सहज सरल रघुबरबचन कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जिमि बक्रगति यद्यपि सलिल समान ॥४३॥

रहसी रानि रामरुख पाई, बोली कपटसनेहु जनाई ।
सपथ तुम्हार भरत कइ आना, हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥
तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता, जननी - जनक-बंधु-सुख दाता ।
राम सत्य सबु जो कछु कहहू, तुम्ह पितु-मातु-बचन-रत अहहू ॥
पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई, चौथेपन जेहि अजसु न होई ।
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे, उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे, मगह गयादिक तीरथ जैसे ।
रामहि मातुबचन सब भाये, जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये ॥
दो० गइ मुरुछा रामहिं सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव रामआगमनु कहि बिनय समयसम कीन्ह ॥ ४४ ॥
अवनिप अकनि रामु पगुधारे, धरि धीरजु तब नयन उघारे ।
सचिव संभारि राउ बैठारे, चरन परत नृप रामु निहारे ॥
लिये सनेहविकल उर लाई, गई मनि मनहुँ फनिकु फिरि पाई ।
रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू, चला बिलोचन बारिप्रबाहू ॥
सोकबिबस कछु कहइ न पारा, हृदय लगावत बारहिं बारा ।
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं, जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी, बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।
आसुतोषु तुम्ह अवढर दानी, आरति हरहु दीनजनु जानी ॥
दो० तुम्ह प्रेरक सब के हृदय सो मति रामहिं देहु ।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु ॥ ४५ ॥
अजस होउ जग सुजस नसाऊ नरक परउँ बरु सुरपुरु जाऊ ।
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं, लोचन ओट राम जनि होहीं ॥
अस मन गुनइ राउ नहिं बोला, पीपर-पात सरिस मनु डोला ।
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी, पुनि कछु कहहि मातु अनुमानी ॥
देस काल अवसर अनुसारी, बोले बचन बिनीत बिचारी ।
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई, अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥

बेति लघु बात लागि दुखु पावा, काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा।
देखि गोसाइँहि पूछिउँ माता, सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता॥
दो० मंगलसमय सनेहबस सोचु परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात॥४६॥
धन्य जनम जगतीतलतासू, पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ता के, प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके॥
आयसु पालि जनमफलु पाई, ऐहउं बेगिहि होउ रजाई।
बिदा मातु सन आवउ माँगी, चलिहउं बनहिं बहुरि पग लागी॥
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा, भूप सोकबस उतरु न दीन्हा।
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी, छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भये बिकल सकल नरनारी, बेलि बिटप जिमि देखि दवारी।
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई, बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥
दो० मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ॥४७॥
मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी, जहं तहं देहिं कैकइहि गारी।
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ, छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा, डारि सुधा बिषु चाहति चीखा।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी, भइ रघु बंस-बेनु-बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ु एइ काटा, सुख मह सोक ठाटु धरि ठाटा।
सदा राम एहि प्रानसमाना, कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ, सब बिधि अगम अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई, जानि न जाइ नारिगति भाई॥
दो० काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥४८॥
का सुनाइ बिधि काह सुनावा, का देखाइ चह काहि देखावा।
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा, बर बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा॥

जो हठि भयउ सकल दुखभाजनु, अबलाबिकल बिधि गुन गाजनु।
एक धरमपरमिति पहिचाने, नृपहि दोसु नहि देहि सयाने॥
सिबि-दधीचि-हरिचन्द-कहानी, एक एक सन कहहि बखानी।
एक भरत कर संमत कहहीं, एक उदास भाय सुनि रहहीं॥
कान मूंदि कर रद गहि जीहा, एक कहहि यह बात अलीहा।
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे, रामु भरत कहं प्रानपियारे॥
दो० चंद चवइ बरु अनलकन सुधा होइ बिष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहि कछु भरतु रामप्रतिकूल॥४९॥
एक बिधातहि दूषन देहीं, सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं।
खरभरु नगर सोचु सब काहू, दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी, जे प्रिय परम कैकई केरी।
लगीं देन सिख सीलु सराही, बचन बानसम लागहि ताही॥
भरत न मोहि प्रिय रामसमाना, सदा कहहु यहु सब जग जाना।
करहु राम पर सहजसनेहू, केहि अपराध आजु बन देहू॥
कबहुँ न किएहु सवति आरेसू, प्रीतिप्रतीति जान सबु देसू।
कौसल्या अब काह बिगारा, तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥
दो० सीय कि पिय संगु परिहरिहि लषनु कि रहिहहि धाम।
राजु कि भूंजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥५०॥
अस बिचारि उर छाडहु कोहू, सोक कलंक कोठि जनि होहू।
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू, कानन काह राम कर काजू॥
नाहिन राम राज के भूखे, धरमधुरीन बिषयरस रूखे।
गुरुगृह बसहि राम तजि गेहू, नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥
जौं नहिं लगिहहु कहे हमारे, नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे।
जौं परिहास कीन्हि कछु होई, तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
रामसरिस सुत कानन जोगू, काह कहिहि सुनि तुम कहं लोगू।
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई, जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥

छंद जेहि भांति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानुबिनु दिन प्रानबिनु तनु चन्दबिन जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौंजिय भामिमी॥

सो० सखिन्ह सिखावन दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी, मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी।
ब्याधि असाधि जानितिन्ह त्यागी, चलीं कहत मतिमंद अभागी॥
राजु करत यह दैव बिगोई, कीन्हेसि अस जस करइ न कोई।
एहि विधि बिलपहि पुर-नर-नारी, देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी
जरहि बिषमजर लेहि उसासा, कवनि राम बिनु जीवन-आशा।
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी, जनु जल-चर-गन सूखत पानी॥
अतिबिपाद वस लोग लुगाई, गये मातु पहिं राम गोसाईं।
मुखप्रसन्नु चित चौगुन चाऊ, मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥

दो० नवगयन्दु रघुबीरमनु राजु अलानसमान।
छूटे जानि बनगमनु मुनि उर अनन्दु अधिकान॥५२॥

रघु-कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा, मुदित मातुपद नायउ माथा।
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे, भूषनबसन निछावरि कीन्हे॥
बार बार मुख चुम्बति मात, नयन नेहजलु पुलकित गाता।
गोद राखि पुनि हृदय लगाये, स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये।
प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई, रंक धनदपदवी जनु पाई।
सादर सुन्दरबदनु निहारी, बोली मधुरबचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी, कबहिं लगन मुद-मंगल-कारी
सुकृत सील सुख सीव सुहाई, जनमलाभ कइ अवधि अघाई॥

दो० जेहि चाहत नरनारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि त्रिपित वृष्टि सरद रितु स्वाति॥५३॥

तात जाउं बलि बेगि नहाहू, जो मन भाव मधुर कछु खाहू।
पितुसमीप तब जायहु भैया, भइ बडि बार जाइ बलि मैया ॥
मातवचन सुनि अति अनुकूला, जनु सनेह सुर-तरु के फूला।
सुखमकरंद भरे स्रियमूला, निरखि राम-मन-भवँरु न भूला ॥
धरमधुरीन धरमगति जानी, कहेउ मातु सन अति-मृदु-बानी।
पिता दीन्ह मोहि काननराजू, जहं सब भाँति मोर बड काजू ॥
आयसु देहि मुदितमन माता, जेहि मुदमंगल कानन जाता।
जनि सनेह बस डरपसि भोरे, आनँदु अंब अनुग्रह तोरे ॥
दो० बरप चारि दस विपिन बसि करि पितु-बचन-प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउं मन जनि करसि मलान ॥५४॥
बचन विनीत मधुर रघुबर के, सरसम लगे मतु उर करके।
सहमि सूखि सुनि सीतलवानी, जिमि जवास परे पावस पानी ॥
कहि न जाइ कछु हृदय विषादू, मनहुँ मृगी सुनि केहरिनादू।
नयन सजल तन थरथर काँपी, माँजहि खाइ मीन जनु मापी ॥
धरि धीरजु सुतबदनु निहारी, गदगदबचन कहति महतारी।
तात पितहि तुम्ह प्रानपियारे, देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
राज देन कहुँ सुभ दिन साधा, कहेउ जान बन केहि अपराधा।
तात सुनावहु मोहि निदानू, को दिन-कर-कुल भयउ कृसानू ॥
दो० निरखि रामरुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ ५५॥
राखि न सकइ न कहि सक जाहू, दुहूं भाँति उर दारुन दाहू।
लिखत सुधाकर गालिखि राहू, विधिगति वाम सदा सब काहू ॥
धरम सनेह उभय मति घेरी, भइ गति साँप छछु-दरि केरी।
राखउं सुतहि करउं अनुरोधू, धरमु जाइ अरु बंधुबिरोधू ॥
कहउं जान बन तौ बडि हानी, सँकट-सोच-बिबस भइरानी ॥
बहुरि समुझि तियधरमु सयानी, रामु भरत दोउ सुत सम जानी।

सरलसुभाउ रामसतारी, बोली बचन धीर धीर भारी।
तात जाउं बलि कीन्हेहु नीका, पितुआयसु सब धरम क टीका॥
दो० राज देन कहि दीन्ह बनमोहि न सो दुखलेसु।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥५६॥
जौं केवल पितुआयसु तात, तौ जनि जाहु जानि बडि माता।
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना, तौ कानन सत-अवध-समाना॥
पितु बनदेव मातुबनदेवी, खग मृग चरनसरोरुह सेवी।
अंतहु उचित नृपहि बनबासू, बय बिलोकि हिय होइ हरासू॥
बड़भागी बन अवध अभागी, जो रघु-बंस तिलकु तुम्ह त्यागी।
जौं सुत कहउं संग मोहि लेहू, तुम्हरे हृदय होय संदेहू॥
पूत परमप्रिय तुम सबही के, प्रान प्रान के जीवन जी के।
तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ, मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥
दो० यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेह बढाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥५७॥
देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं, राखहिं नयन पलक की नाईं।
अवधि अंबु प्रियपरिजन मीना, तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना॥
अस बिचारि सोइ करहु उपाई, सबहिं जिअत जेहि भेटहु भाई।
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ, करि अनाथ जन-परिजन-गाऊँ॥
सब कर आजु सुकृतफल बीता, भयउ करालकाल बिपरीता।
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी, परमअभागिनि आपुहि जानी॥
दारुन-दुसह-दाह उर ब्यापा, बरनि न जाइ बिलापकलापा।
राम उठाइ मातु उर लाई, कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई॥
दो० समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाय।
जाइ सासु पद-कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥५८॥
दीन्ह असीस सासु मृदुबानी, अति सुकुमारि देखि अकुलानी।
बैठि नमित मुख सोचति सीता, रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता॥

चलन चहत बन जीवननाथू, केहि सुकृती सन होइहि साथू ।
की तनु प्रान कि केवल प्राना, बिधि करतब कछु जाइ न जाना ॥
चारु चरननख लेखति धरनी, नूपुरमुखर मधुर कवि बरनी ।
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं, हमहि सीयपद जनि परिहरहीं ॥
मंजुबिलोचन मोचति बारी, बोली देखि राम महतारी ।
तातु सुनहु सिय अति सुकुमारी, सासु-ससुर-परिजनहिं प्यारी ॥
दो० पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानु-कुल-भानु ।
पति रबि-कुल-कैरव-बिपिन-बिधु गुन-रूप-निधानु ॥५९॥
मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई, रूपरासि गुन सील सुहाई ।
नयनपुतरि करि प्रीति बढाई, राखेउँ प्रान जानकिहि लाई ॥
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली, सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली ।
फूलत फलत भयउ बिधि बामा, जानि न जाइ काह परिनामा ॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा, सिय न दीन्ह पग अवनिकठोरा ।
जिवनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ, दीपबाति नहिं टारन कहऊँ ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा, आयसु काह होइ रघुनाथा ।
चंद-किरन रस-रसिक चकोरी, रबिरुख नयन सकइ किमि जोरी ॥
दो० करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि ।
बिषबाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनमूरि ॥६०॥
बनहित कोल किरात किसोरी, रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी ।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ, तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥
कै तापसतिय कानन जोगू, जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू ।
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती, चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥
सुत-सुरसुभग बनज-बन-चारी, डाबर जोग कि हंसकुमारी ।
अस बिचारि जस आयसु होई, मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥
जौं सिय भवन रहइ कह अंबा, मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ।
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी, सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

दो० कहि प्रियबचन बिवेकमय कीन्ह मातुपरितोषु।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोषु ॥६१॥
मातुसमीप कहत सकुचाहीं, बोले समउ समुझि मन माहीं।
राजकुमारि सिखावन सुनहू, आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥
आपन मोर नीक जौं चहहू, बचनु हमार मानि गृह रहहू।
आयसु मोर सासुसेवकाई, सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा, सादर सासु-ससुर-पद-पूजा।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी, होइहि प्रेमबिकल मति भोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी, सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी।
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही, सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥
दो० गुरु-स्रुति-संमत धरमफलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठबस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥६२॥
मैं पुनि करि प्रवान पितुबानी, बेगि फिरब सुनि सुमुखि सयानी।
दिवस जात नहिं लागहि बारा, सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा, तौ तुम दुख पाउब परिनामा।
काननु कठिन भयंकर भारी, घोर घाम हिम बारि बयारी ॥
कुस कंटक मग काँकर नाना, चलब पयादेहिं बिनु पद त्राना।
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे, मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कंदर खोह नदी नद नारे, अगम अगाध न जाहिं निहारे।
भालु बाघ बृक केहरि नागा, करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥
दो०--भूमि सयन बलकलबसन असन कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥६३॥
नर अहार रजनीचर चरहीं, कपटबेष बिधि कोटिक करहीं।
लागइ अति पहार कर पानी, बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहंग बन घोरा, निसि-चर निकर नारि नर चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आये, मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये ॥

हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू, सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली, जिअइ कि लवनपयोधि मराली ।
नव-रसाल-वन विहरनसीला, सोह कि कोकिलविपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी, चंदबदनि दुख कानन भारी ।
दो०— सहज सुहृद-गुर-स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि ॥६४॥
सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के, लोचन ललित भरे जल सिय के ।
सीतल सिख दाहक भइ कैसे, चकइहि सरदचन्द निसि जैसे ॥
उतरु न आव विकल बैदेही, तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ।
वरवस रोकि बिलोचनबारी, धरि धीरज उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासुपग कह कर जोरी, छमबि देवि बडि अविनय मोरी ।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई, जेहि विधि मोर परमहित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं, पिय-वियोग-सम दुख जग नाहीं ।
दो० प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद-विधु सुरपुर नरक समान ॥६५॥
मातु पिता भगिनी -प्रिय भाई, प्रियपरिवार सुहृद समुदाई ।
सास ससुर गुरु सजन सहाई, सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ।
तनु धनु धामु धरनि पुरराजू, पतिविहीन सब सोकसमाजू ॥
भोग रोगसम भूषन भारू, जम-जातना-सरिस संसारू ।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं, मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु वारी, तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे, सरद-विमल-विधु-वदन निहारे ॥
दो०—खग मृग परिजन नगरु वनु वलकल विमल दुकूल ।
नाथसाथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूल ॥६६॥
वनदेवी वनदेव उदारा, करिहहिं सासु-ससुर-सम-सारा ।

कुस-किसलय-साथरी सुहाई, प्रभुसंग मंजु मनोज तुराई ॥
कन्द मूल फल अमिअ अहारू, अवध-सौध-सत सरिस पहारू।
छिनु छिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी, रहिहउं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे, भय बिषाद परिताप घनेरे ।
प्रभु-बियोग-लव-लेस-समाना, सब मिलि होहि न कृपानिधाना॥
अस जिय जानि सुजान-सिरोमनि, लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि।
बिनती बहुत करउँ का स्वामी, करुनामय उर-अन्तर-जामी ॥
दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहि प्रान ।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील - सनेह - निधान ॥ ६७ ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी, छिनु छिनु चरनसरोज निहारी ।
सबहि भाँति प्रिय सेवा करिहउँ, मारगजनित सकल स्रम हरिहउँ ॥
पाय पखारि बैठि तरुछाहीं, करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ।
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखें, कहँ दुखसमउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन-तरु पल्लव डासी, पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार बार मृदु मूरति जोही, लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसंग मोहि चितवनिहारा, सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा
मैं सुकुमारि नाथु बनजोगू तुम्हहिं उचित तपु मो कहँ भोगू॥
दो० ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु-बिषम बियोग-दुखु सहिहहिं पाँवर प्रान ॥ ६८ ॥
अस कहि सीय बिकल भइ भारी, बचनबियोग न सकी सँभारी ।
देखि दसा रघुपति जिय जाना, हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपाल भानु-कुल नाथा, परिहरि सोचु चलहु बन साथा ।
नहि बिषाद कर अवसरु आजू, बेगि करहु बन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई, लगे मातुपद आसिष पाई ।
बेगि प्रजादुख मेटब आई, जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी, देखिहउँ नयन मनोहर जोरी ।

सुदिन सुघरी तात कब होइहि, जननी जिअत बदनबिधु जोइहि ॥
दो० बहुरि बच्छु कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहि बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरषिहउँ गात ॥६९॥
लखि सनेह कातरि महतारी, बचन न आव बिकल भइ भारी।
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना, समउ सनेह न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासुपग लागी, सुनिय माय मैं परम अभागी।
सेवा समय दैव बन दीन्हा, मोर मनोरथु सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छाडिअ छोहू, करमु कठिन कछु दोष न मोहू।
सुनि सियबचन सासु अकुलानी, दसा कवनि बिधि कहउँ बखानी।
बारहि बार लाइ उर लीन्ही, धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही।
अचल होउ अहिवात तुम्हारा, जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा ॥
दो०--सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पदपदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥ ७० ॥
समाचार जब लछिमन पाये, ब्याकुल बिलष बदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा, गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े, मीनु दीनु जनु जल ते काढ़े।
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा, सबु सुखु सुकृत सिरान हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा, रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा।
राम बिलोकि बधु करजोरे, देह गेह सब सन तृनु तोरे ॥
बोले बचन रामु नयनागर, सील-सनेह-सरल-सुख-सागर।
तात प्रेमबस जनि कदराहू, समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥
दो० मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर न तरु जनमु जग जाय ॥७१॥
अस जिय जानि सुनहु सिख भाई, करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई।
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं, राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा, होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू, सब कहँ परइ दुसह-दुख-भारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू, न तरु तात होइहि बड़ दोषू ।
जासु राज प्रियप्रजा दुखारी, सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति बिचारी, सुनत लषन भये व्याकुल भारी ।
सिअरे बचन सूखि गये कैसे, परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

दो० उतर न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त कहा बसाइ ॥ ७२ ॥

दीन्हि मोहिं सिख नीकि गोसाईं, लागि अगम अपनी कदराईं ।
नरबर धीर धरम-धुर-धारी, निगम नीति कहं ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला, मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ।
गुरु पितु मातु न जानउं काहू, कहउ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहं लगि जगत सनेह सगाईं, प्रीति प्रतीति निगम निजु गाईं ।
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी, दीनबंधु उर-अंतर-जामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही, कीरति-भूति-सुगति-प्रिय जाही ।
मन-क्रम-बचन चरनरत होई, कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥

दो० करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदुबचन बिनीत ।
समुझाये उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत ॥ ७३ ॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई, आवहु बेगि चलहु बन भाई ।
मुदित भये सुनि रघुबर बानी, भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥
हरषित हृदय मातु पहिं आये, मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये ।
जाइ जननि पग नायउ माथा, मनु रघुनंदन-जानकि-साथा ॥
पूछे मातु मलिन मनु देखी, लषन कहा सब कथा बिसेखी ।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा, मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा ॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू, एहि सनेह बस करब अकाजू ।
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं, जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ॥

दो० समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूप-सुसील-सुभाउ।
नृपसनेहु लखि धुनेउ सिर पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ ७४॥
धीरज धरेउ कुअवसर जानी, सहज सुहृद बोली मृदुबानी।
तात तुम्हार मातु बैदेही, पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू, तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं, अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं, सेइअहि सकल प्रान की नाईं।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के, स्वारथ-रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते, सब मानिअहि राम के नाते।
अस जिय जानि संग बन जाहू, लेहु तात जगजीवन लाहू॥
दो० भूरि भागभाजन भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल कीन्ह रामपद ठाउँ॥७५॥
पुत्रवती जुवती जग सोई, रघु-पति-भगतु जासु सुतु होई।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी, रामबिमुख सुत तें हित हानी॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं, दूसर हेतु तात कछु नाहीं।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू, राम-सीय-पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू, जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।
सकल प्रकार बिकार बिहाई, मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू, संग पितु मातु रामु सिय जासू।
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू, सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥
छं०—उपदेसु यह जेहि तात तुम्हरे रामसिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघु-बीर-पद नित नित नई॥
सो० मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस॥७६॥

गये लषन जहँ जानकिनाथू, भे मन मुदित पाइ प्रियसाथू ।
बंदि राम-सिय-चरन सुहाये, चले संग नृपमंदिर आये ॥
कहहिं परसपर पुर नर-नारी, भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ।
तन कृस मन दुखु बदन मलीने, बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥
कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं, जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ।
भइ बड़ि भीर भूपदरबारा, बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे, कहि प्रियबचनु रामु पगु धारे ।
सियसमेत दोउ तनय निहारी, ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥
दो० सीयसहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेहबस राउ लेइ उर लाइ ॥७७॥
सकइ न बोलि बिकल नरनाहू, सोकजनित उर दारुन दाहू ।
नाइ सीस पद अति अनुरागा, उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीस आयसु मोहि दीजै, हरषसमय बिसमउ कत कीजै ।
तात किये प्रिय प्रेमप्रमादू, जस जग जाइ होइ अपबादू ॥
सुनि सनेहबस उठि नरनाहा, बैठारे रघुपति गहि बाँहा ।
सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं, राम चराचरनायकु अहहीं ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी, ईसु देइ फल हृदय बिचारी ।
करइ जो करमु पाव फलु सोई, निगम नीति असि कह सबु कोई ॥
दो० अउर करइ अपराध कोउ अउर पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंतगति को जग जानइ जोगु ॥७८॥
राय रामराखन हित लागी, बहुत उपाय किये छलु त्यागी ।
लखा रामरुख रहत न जाने, धरम-धुरं-धर धीर सयाने ॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही, अतिहित बहुत भाँति सिख दीन्ही ।
कहि बन के दुख दुसह सुनाये, सास ससुर पितु सुख समझाये ॥
सियमनु रामचरन अनुरागा, घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ।
अउरउ सबहि सीय समुझाई, कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥

सचिवनारि गुरुनारि सयानी, सहित सनेह कहहिं मृदुबानी।
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू, करहु जो कहहिं ससुर-गुरु-सासू॥
दो० सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद-चंद-चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥७९॥
सीय सकुचबस उतरु न देई, सो सुनि तमकि उठी कैकेई।
मुनि-पट भूषन भाजन आनी, आगे धरि बोली मृदुबानी॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा, सील सनेह न छाँडिहि भीरा।
सुकृतु सुजसु परलोक नसाऊ, तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा, राम जननिसिख सुनि सुख पावा।
भूपहि बचन बानसम लागे, करहिं न प्रान पयान अभागे॥
लोग बिकल मुरछित नरनाहू, काह करिय कछु सूझ न काहू।
राम तुरत मुनिवेषु बनाई, चले जनक जननिहिं सिरु नाई॥
दो०—सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बन्धु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥८०॥
निकसि बसिष्ठद्वार भये ठाढे, देखे लोग बिरहदव दाढे।
कहि प्रियबचन सकल समुझाये, बिप्रबृंद रघुबीर बोलाये॥
गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे, आदर दान बिनयबस कीन्हे।
जाचक दान मान संतोषे, मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥
दासीं दास बोलाइ बहोरी, गुरुहि सौंपि बोले कर जोरी।
सब कै सार सभार गोसाईं, करबि जनक जननी की नाईं॥
बारहिं बार जोरि जुग पानी, कहत रामु सब सन मृदुबानी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी, जेहितें रहइ भुआल सुखारी॥
दो०—मातु सकल मोरे बिरह जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाइ तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन॥८१॥
एहि बिधि राम सबहिं समुझावा, गुर-पद-पदुम हरषि सिरु नावा।
गनपति गौरि गिरीस मनाई, चले असीस पाइ रघुराई॥

रामु चलत अति भयउ विषादू, सुनि न जाइ पुर आरतनादू।
कुसगुन लंक अवध अति सोकू, हरष-विषाद-विवस सुरलोकू ॥
गइ मुरुछा तब भूपति जागे, बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे।
रामु चले बन प्रान न जाहीं, केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥
एहि ते कवन व्यथा बलवाना, जो दुखु पाइ तजिहि तनु प्राना।
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू, लेइ रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥
दो० सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गये दिन चारि ॥ ८१ ॥
जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई, सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई।
तौ तुम्ह विनय करेहु कर जारी, फेरिय प्रभु मिथिलेसकिसोरी ॥
जब सिय कानन देखि डेराई, कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई।
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू, पुत्रि फिरिय बन बहुत कलेसू ॥
पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी, रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी।
एहि विधि करेहु उपायकदंबा, फिरइ त होइ प्रानअवलंबा ॥
नाहिं त मोर मरनु परिनामा, कछु न बसाइ भये विधि बामा ॥
अस कहि मुरुछि परा महिराऊ, राम लषनु सिय आनि देखाऊ ॥
दो० पाइ रजायसु सिरु रथु अतिबेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहर नगर सीयसहित दोउ भाइ ॥ ८२ ॥
तब सुमंत्र नृपवचन सुनाये, करि विनती रथ रामु चढ़ाये।
चढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई, चले हृदय अवधहिं सिरु नाई ॥
चलत रामु लखि अवध अनाथा, विकल लोग सब लागे साथा।
कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं, फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं
लागति अवध भयावन भारी, मानहुँ कालराति अँधियारी।
घोर जतुसम पुर-नर-नारी, डरपहिं एकहिं एक निहारी ॥
घर मसान परिजन जनु भूता, सुत हित मीतु मनहुँ जमदूता।
बागन्ह विटप बेलि कुम्हिलाहीं, सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥

दो० हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुर-पसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥ ८४॥
रामवियोग बिकल सब ठाढ़े, जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।
नगर सफल बनु गहबर भारी, खग मृग बिपुल सकल नरनारी॥
बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही, जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही
सहि न सके रघु-बर-बिरहागी, चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं, राम लषनु सिय बिनु सुख नाहीं।
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू, बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई, सुरदुर्लभ सुखसदन बिहाई।
राम-चरन-पंकज प्रिय जिन्हहीं, बिषयभोग बस करहिं कि तिन्हहीं
दो० बालक बृद्ध बिहाय गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किया प्रथम दिवस रघुनाथ॥ ८५॥
रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी, सदय हृदय दुखु भयउ बिसेखी।
करुनामय रघुनाथ गोसाईं, बेगि पाइअहिं पीर पराई॥
कहि सप्रेम मृदुबचन सुहाये, बहुबिधि राम लोग समुझाये।
किये धरम उपदेस घनेरे, लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥
सील सनेहु छाड़ि नहिं जाई, असमंजसबस भे रघुराई।
लोग सोग-स्रम-बस गये सोई, कछुक देवमाया मति मोई॥
जबहिं जामजुग जामिनि बीती, राम सचिव सन कहेउ सप्रीती।
खोजु मारि रथ हाँकहु ताता, आन उपाय बनिहि नहिं बाता॥
दो०—राम लषन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥ ८६॥
जागे सकल लोग भये भोरू, गे रघुनाथ भयउ अति सोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं, राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू, भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू।
एकहिं एक देहिं उपदेसू, तजे राम हम जानि कलेसू॥

निदहिं आपु सराहहिं मीना, धिक जीवन रघु - बीर - बिहीना ।
जौं पै प्रियबियोगु बिधि कीन्हा, तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ॥
एहि बिधि करत प्रलापकलापा, आये अवध भरे परितापा ।
बिषमबियोग न जाइ बखाना, अवधिआस सब राखहिं प्राना ॥
दो०--राम-दरस-हित नेम ब्रत लगे करन नरनारि ।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥ ८७ ॥
सीता-सचिव सहित दोउ भाई, स्रृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई ।
उतरे राम देवसरि देखी, कीन्ह दण्डवत हरषु बिसेखी ॥
लषन-सचिव सिय किये प्रनामा, सबहिं सहित सुख पायउ रामा ।
गंग सकल मुद मंगल-मूला, सब सुखकरनि हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथाप्रसंगा, रामु बिलोकहिं गंगतरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई, बिबुध-नदी-महिमा अधिकाई ॥
मज्जनु कीन्ह पंथस्रमु गयऊ, सचि जलु पियतु मुदित मनु भयऊ ।
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमु भारू, तेहि स्रमु यह लौकिक ब्यवहारू ॥
दो०--सुद्ध सच्चिदानन्दमय कद भानु-कुल-केतु ।
चरित करत नरअनुहरत संसृति-सागर-सेतु ॥ ८८ ॥
यह सुधि गुह निषाद जब पाई, मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ।
लिय फल मूल भेट भरि भारा, मिलन चलेउ हिय हरषु अपारा ॥
करि दंडवत भेट धरि आगें, प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ।
सहज-सनेह-बिबस रघुराई, पूछी कुसल निकट बैठाई ॥
नाथ कुशल पदपंकज देखे, भयउ भागभाजन जन लेखे ।
देव धरनि-धनु-धाम तुम्हारा, मैं जन नीच सहित परिवारा ॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ, थापिय जन सबु लोगु सिहाऊ ।
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना, मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥
दो० बरसु चारिदस बासु बन मुनि ब्रतु-बेषु-अहारु ।
ग्रामुबास नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखभारु ॥८९॥

राम- लखन-सिय-रूप निहारी, कहहिं सप्रेम ग्राम-नरनारी।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे, जिन्ह पठये वन बालक ऐसे॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा, लोयनलाहु हमहिं बिधि दीन्हा।
तब निषादपति उर अनुमाना, तरु सिसुपा मनोहर जाना॥
लेइ रघुनाथहि ठाऊँ देखावा, कहेउ राम सब भाँति सुहावा।
पुरजन करि जोहारु घर आये, रघुबर सन्ध्याकरन सिधाये॥
गुह सवाँरि साथरी डसाई, कुस-किसलय-मय मृदुल सुहाई।
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी, दोना भरि भरि राखेसि आनी॥
दो०--सीय-सुमंत्र-भ्राता-सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु-बंस-मनि पाय पलोटत भाइ॥ ९०॥
उठे लखनु प्रभु सोवत जानी, कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी।
कछुक दूरि सजि बानसरासन, जागन लगे बैठि बीरासन॥
गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती, ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती।
आपु लखनु पहिं बैठेउ जाई, कटि भाथा सर चाप चढाई॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू, भयउ प्रेमबस हृदय बिषादू।
तनु पुलकित जल लोचन बहई, बचन सप्रेम लखन सन कहई॥
भू-पति-भवन सुभाय सुहावा, सुर-पति सदनु न पटतर पावा।
मनि-मय रचित चारु चौबारे, जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥
दो० सुचि सुबिचित्र सु-भोग-मय सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनिदीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥९१॥
बिबिधि बसन उपधान तुराई, छीरफेन मृदु बिसद सुहाई।
तहँ सियरामु सयन निसि करहीं, निज छबि रति मनोज मद हरहीं॥
ते सियरामु साथरी सोये, स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोये।
मातु पिता परिजन पुरबासी, सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं, महि सोवत तेइ रामु गोसाईं।
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ, ससुर सुरेससखा रघुराऊ॥

रामचन्दु पति सो वैदेही, सोवत महि विधि वाम न केही।
सिय रघुवीर कि कानन जोगू, करमु प्रधान सत्य कह लोगू॥
दो० कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहिं सुखअवसर दुखु दीन्ह॥९२॥
भइ दिन-कर-कुल-विटप-कुठारी, कुमति कीन्ह सब विस्व दुखारी।
भयउ विषादु निषादहि भारी, रामुसीय महिसयन निहारी॥
बोले लषनु मधुर-मृदु बानी, ग्यान विराग-भगति-रस सानी।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता, निजकृत करम भोग सबु भ्राता॥
जोग वियोग भोग भल मंदा, हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू, संपति विपति करमु अरु कालू॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू, सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू।
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं, मोहमूल परमारथु नाहीं॥
दो० सपने होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंचु जिय जोइ॥ ९३॥
अस विचारि नहिं कीजिय रोषु, काहुहि बादि न देइय दोषू।
मोहनिसा सब सोवनिहारा, देखिय सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी, परमारथी प्रपंचवियोगी।
जानिय तबहिं जीव जग जागा, जब सब विषय विलास विरागा॥
होइ विवेकु मोहभ्रम भागा, तब रघु-नाथ-चरन अनुरागा।
सखा परमपरमारथ एहू, मन-क्रम-बचन रामपद नेहू॥
रामु ब्रह्म परमारथरूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल-विकार-रहित गतभेदा, कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥
दो० भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जगजाल॥९४॥
सखा समुझि अस परिहरि मोहू, सिय-रघुवीर-चरन रत होहू।
कहत रामगुन भा भिनुसारा, जागे जगमंगल दातारा॥

सकल सौच करि राम नहावा, सुचि सुजान बटछीर मँगावा।
अनुजसहित सिर जटा बनाये, देखि सुमंत्र नयनजल छाये॥
हृदय दाहु अति वदन मलीना, कह कर जोरि वचन अति दीना।
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा, लेइ रथु जाहु राम के साथा॥
वनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई, आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई।
लपनु रामु सिय आनेहु फेरी, संसय सकल सँकोच निवेरी॥
दो०--नृप अस कहेउ गोसाइं जस कहिय करउँ बलि सोइ।
करि विनती पायन्ह परेउ दीन्ह वाल जिमि रोइ॥९५॥
तात कृपा करि कीजिय सोई, जा ते अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि रामु उठाइ प्रबोधा, तात धरममगु तुम्ह सबु सोधा॥
सिवि दधीच हरिचंद नरेसा, सहे धरमहित कोटि कलेसा।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना, धरम धरेउ सहि संकट नाना॥
धरमु न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना।
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा, तजे तिहूँपुर अपजसु छावा॥
संभावित कहुँ अपजसलाहू मरन-कोटि-सम दारुन दाहू।
तुम सन तात बहुत का कहऊं, दिये उतरु फिरि पातकु लहऊं॥
दो०--पितुपद गहि कहि कोटि नति बिनय करबि कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै तात करिय जनि मोरि॥९६
तुम्ह पुनि पितुसम अति हित मोरे, बिनती करउं तात कर जोरे।
सब बिधि सोइ करतव्य तुम्हारे, दुखु न पाव पितु सोच हमारे॥
सुनि रघुनाथ-सचिव-संवादू, भयउ सपरिजन विकल निषादू।
पुनि कछु लपन कही कटुबानी, प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई, लषनसंदेसु कहिय जनि जाई।
कह समंत्रु पुनि भूप संदेसू, सहि न सकिहि सिय बिपिनकलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिर सीया, सोइ रघुबरहिं तुम्हहिं करनीया
नतरु निपट अवलंबविहीना, मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥

दो० मइके ससुरे सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपत महान ॥६७॥
बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती, आरति प्रीति न सो कहि जाती।
पितु संदेसु सुनि कृपानिधाना, सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥
सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू, फिरहु त सब कर मिटइ खँभारू।
सुनि पतिबचन कहति बैदेही, सुनहु प्रानपति परम सनेही॥
प्रभु करुनामय परमबिबेकी, तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई, कहँ चन्द्रिका चंदु तजि जाई॥
पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई, कहति सचिव सन गिरा सुहाई।
तुम्ह पितु-ससुर-सरिस हितकारी, उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥
दो० आरतिबस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरज सुत-पद-कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात ॥६८॥
पितु-बैभव-बिलासु मैं डीठा, नृप-मनि-मुकुट मिलत पदपीठा।
सुखनिधान अस पितुगृह मोरे, पिय-बिहीन मन भाव न भोरे॥
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ, भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।
आगे होइ जेहि सुरपति लेई, अरधसिंहासन आसनु देई॥
ससुर एतादृस अवधनिवासू, प्रिय परिवारु मातु सम सासू।
बिनु रघुपति-पद-पदुम-परागा, मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा॥
अगम पंथ बन भूमि पहारा, करि केहरि सर सरित अपारा।
कोल किरात कुरंग बिहंगा, मोहि सब सुखद प्रान-पति-संगा॥
दो० सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पाय।
मोरि सोचु जनि करिय कछु मैं बन सुखी सुभाय ॥६९॥
प्राननाथ प्रियदेवर साथा, बीर धुरीन धरे धनु भाथा।
नहिं मग स्रमु भ्रमु दुखु मन मोरे, मोहि लगि सोचु करिय जनि भोरे॥
सुनि सुमंत्रु सिय सीतलबानी, भयउ बिकल जनु फनि मनिहानी।
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना, कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती, तदपि होति नहिं सीतल छाती।
जतन अनेक साथ हित कीन्हे, उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥
मेटि जाइ नहिं रामरजाई, कठिन करमगति कछु न बसाई।
राम-लषन-सिय-पद सिरु नाई, फिरेउ बनिकु जिमि मूर गँवाई॥
दो० रथु हाँकेउ हय रामतन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥१००॥
जासु वियोग विकल पसु ऐसे, प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे।
बरबस राम सुमंत्रु पठाये, सुरसरितीर आपु तब आये॥
माँगी नाव न केवट आना, कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन-कमल-रज कहुं सबु कहई, मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई, पाहन ते न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनिघरनी होइ जाई, बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपालउं सबु परिवारू, नहिं जानउं कछु अउर कबारू।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू, मोहि पदपदुम पपारन कहहू॥
छं० पदकमल धोइ चढाइ नाव न नाथ उतराई चहउं।
मोहि राम राउरि आन दसरथसपथ साँची कहउं॥
बरु तीर मारहुं लषनु पै जब लगि न पाय पखारिहउं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहउं॥
सो०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुनाऐन चितइ जानकी-लषन-तन॥१०१॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई, सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।
वेगि आनु जलु पाय पखारू, होत बिलंबु उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा, उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा, जेहिं जगु किय तिहुं पगहुँ तें थोरा॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी, सुनि प्रभुबचन मोह मति करषी।
केवट राम रजायसु पावा, पानि कठवता भरि लेइ आवा॥

अति आनंद उमगि अनुरागा, चरन सरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं, एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥
दो० पद-पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥१०२॥
उतरि ठाढ भये सुरसरि रेता, सीय रामु गुह लखन समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा, प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पियहिय की सिय जाननिहारी, मनिमुंदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल लेहि उतराई, केवट चरन गहेउ अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा, मिटे दोष दुख-दारिद दावा।
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी, आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे, दीनदयाल अनुग्रह तोरे।
फिरती बार मोहि जो देवा, सो प्रसाद मैं सिर धरिलेवा॥
दो० बहुत कीन्ह प्रभु लखनु सिय नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥१०३
तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा, पूजि पारथिव नायउ माथा॥
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी, मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर-सँग कुसल बहोरी, आइ करउँ जेहि पूजा तोरी।
सुनि सियबिनय प्रेम-रस-सानी, भइ तब विमल वारि वरबानी॥
सुनु रघु-बीर-प्रिया बैदेही, तव प्रभाउ जग विदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे, तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे॥
तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई, कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई।
तदपि देबि मैं देबि असीसा, सफल होन हित निज बागीसा॥
दो०— प्राननाथ देवरसहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥ १०४॥
गंगबचन सुनि मंगलमूला, मुदित सीय सुरसरि अनुकूला।
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू, सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥

दीनवचन गुह कह कर जोरी, विनय सुनहु रघु-कुल-मनि मोरी।
नाथ साथ रहि पंथु दिखाई, करि दिन चारि चरनसेवकाई॥
जेहि वन जाइ रहब रघुराई, परनकुटी मैं करबि सुहाई।
तब मोहि कहँ जसि देबि रजाई, सोइ करिहउँ रघु-बीर-दोहाई॥
सहज सनेह राम लखि तासू, संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू।
पुनि गुह जाति बोलि सब लीन्हे, करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥
दो० तब गनपति सिव सुमिर प्रभु नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा-अनुज सिय-सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ॥१०५
तेहि दिन-भयउ बिटप तर बासू, लषन सखा सब कीन्ह सुपासू।
प्रात प्रातकृत करि रघुराई, तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥
सचिव सत्य स्रद्धा प्रियनारी, माधवसरिस मीतु हितकारी।
चारि पदारथ भरा भँडारु, पुन्य प्रदेश देस अति चारु॥
छेत्रु अगमु गढ़ गाढ़ु सुहावा, सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा।
सेन सकल तीरथ बरबीरा, कलुष-अनीक-दलन रनधीरा॥
संगम सिंहासनु सुठि सोहा, छत्रु अषयबटु मुनिमन मोहा।
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा, देखि होहिं दुख-दारिद-भंगा॥
दो० --सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।
बंदी वेद-पुरान-गन कहहिं बिमल गुनग्राम॥१०६॥
को कहि सकइ प्रयागप्रभाऊ, कलुष पुंज - कुंजर - मृग - राऊ।
अस तीरथपति देखि सुहावा, सुखसागर रघुबर सुख पावा॥
कहि सिय लषनहिं सखहि सुनाई, श्रीमुख तीरथ - राज - बड़ाई।
करि प्रनामु देखत बन बागा, कहत महातम अति अनुरागा॥
एहि विधि आइ बिलोकी बेनी, सुमिरत सकल सुमंगल देनी।
मुदित नहाइ कीन्हि सिवसेवा, पूजि जथाबिधि तीरथदेवा॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये, करत दण्डवत मुनि उर लाये।
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई, ब्रह्मानंदरासि जनु पाई॥

दो०-देइ असीस मुनीस उर अति अनन्दु अस जानि।
लोचनगोचर सुकृतफल मनहुँ किये विधि आनि ॥१०७॥

कुशलप्रश्न करि आसनु दीन्हे, पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे।
कंद मूल फल अंकुर नीके, दिये आनि मुनि मनहुँ अमी के
सीय-लषन-जन-सहित सुहाये, अति रुचि राम मूल फल खाये।
भये बिगतस्रम राम सुखारे, भरद्वाज मृदुबचन उचारे॥
आजु सुफल तपु तीरथु त्यागू, आजु सुफल जपु जोगु बिरागू।
सुफल सकल सुभ-साधन-साजू, राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी, तुम्हरे दरस आस सब पूजी।
अब करि कृपा देहु बर एहू, निज पद-सरसिज सहज सनेहू॥

दो०—करम बचन मन छाँडि छलु जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहिं किये कोटि उपचार ॥१०८॥

सुनि मुनिबचन रामु सकुचाने, भाव भगति आनंद अघाने।
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा, कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा॥
सो बड सो सब-गुन-गन गेहू, जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू।
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं, बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी, बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी।
भरद्वाज आस्रम सब आए, देखन दसरथसुअन सुहाए॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू, मुदित भये लहि लोयन लाहू।
देहिं असीस परमसुखु पाई, फिरे सराहत सुन्दरताई॥

दो० राम कीन्ह बिस्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जन मुदित मुनिहि सिरुनाइ ॥१०९॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं, नाथ कहिय हम केहि मगु जाहीं।
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं, सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये, सुनि मन मुदित पचासक आये।
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा, सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥

मुनि बटु चारि संग तब कीन्हे, जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे।
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई, प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट निकसहिं जब जाई, देखहिं दरसु नारि नर धाई।
होहिं सनाथ जनमफलु पाई, फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥
दो० बिदा किये बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाये जमुनजल जो सरीरसम स्याम॥११०॥
सुनत तीरबासी नरनारी, धाये निज निज काज बिसारी।
लखन-राम सिय-सुन्दरताई, देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहिं मन माहीं, नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।
जे तिन्ह महँ बयबृद्ध सयाने, तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई, बनहि चले पितु आयसु पाई।
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं, रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥
तेहि अवसर एक तापसु आवा, तेजपुंज लघुबयसु सुहावा।
कबि अलषित गति बेषु बिरागी, मन-क्रम-बचन राम अनुरागी॥
दो०--सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥१११॥
राज सप्रेम पुलकि उर लावा, परमरंक जनु पारस पावा।
मनहुँ प्रेमु परमारथ दोऊ, मिलत धरे तन कह सब कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा, लीन्ह उठाय उमगि अनुरागा।
पुनि सिय-चरन-धूरि धरि सीसा, जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा।
कीन्ह निषाद दंडवत तेही, मिलेउ मुदित लखि रामसनेही।
पियत नयनपुट रूपु पियूखा, मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे, जिन्ह पठये बन बालक ऐसे।
राम-लखन-सिय-रूप निहारी, होहिं सनेह बिकल नरनारी॥
दो० तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावन दीन्ह।
रामरजायसु सीस धरि भवन गवन तेइ कीन्ह॥११२॥

सुनि सीय राम लषन कर जोरी, जमुनहिं कीन्ह प्रनाम वहोरी।
चले ससीय मुदित दोउ भाई, रवितनुजा कै करत बड़ाई॥
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता, कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राजलषन सब अंग तुम्हारे, देखि सोचु अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहिं पाये, ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाये।
अगमु पंथु गिरि कानन भारी, तेहि महं साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि बन जाइ न जोई, हम संग चलहिं जो आयसु होई।
जाब जहाँ लगि तहं पहुँचाई, फिरब वहोरि तुम्हहिं सिर नाई॥
दो०—एहि विधि पूछहिं प्रेमवस पुलकगात जल नैन।
    कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं कहि पुनीत मृदु बैन॥११३॥
जे पुर गाँव बसहिं मगमाहीं, तिन्हहिं नाग सुर-नगर सिहाहीं।
केहि सुकृती केहि घरी बसाये, धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥
जहं जहं रामचरन चलि जाहीं, तिन्ह समान अमरावति नाहीं।
पुन्यपुंज मग-निकट-निवासी, तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-वासी॥
जे भरि नयन विलोकहिं रामहिं, सीता-लषन-सहित घनस्यामहिं।
जे सर सरित राम अवगाहहिं, तिन्हहिं देव-सर-सरित सराहहिं॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई, करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई।
परसि राम-पद-पदुम-परागा, मानति भूमि भूरि निज भागा॥
दो०—छाँह करहिं घन विबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
    देखत गिरि बन विहंग मृग रामु चले मगु जाहिं॥११४॥
सीता-लषन-सहित रघुराई, गाँव निकट जब निकसहिं जाई।
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी, चलहिं तुरत गृह काज विसारी॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी, पाइ नयनफलु होहिं सुखारी।
सजल विलोचन पुलक सरीरा, सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी, लहि जनु रंकन्हि सुर मनि ढेरी।
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं, लोचनलाहु लेहु छन एहीं॥

तिन्हहिं विलोकि विलोकति धरनी, दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी।
सकुचि सप्रेम बाल - मृग - नैनी, बोली मधुरबचन पिकबैनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे, नामु लषनु लघु देवर मोरे।
बहुरि बदनबिधु-अंचल ढाँकी, पियतन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजनमंजु तिरीछे नैननि, निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि।
भईं मुदित सब ग्रामबधूटी, रंकन्ह रायरासि जनु लूटी॥
दो० अति सप्रेम सियपाय परि बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहिसीस॥११८
पारबतीसम पतिप्रिय होहू, देबि न हम पर छाडब छोहू।
पुनि-पुनि बिनय करिय कर जोरी, जौं एहि मारग फिरिय बहोरी॥
दरसन देब जानि निज दासी, लखी सीय सब प्रेमपियासी।
मधुर बचन कहि कहि परितोषी, जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी॥
तबहिं लषन रघुबरसख जानी, पूछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी।
सुनत नारिनर भये दुखारी, पुलकित गात बिलोचन बारी॥
मिटा मोदु मन भये मलीने बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने।
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा, सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा
दो० लषन-जानकी-सहित तब गवन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रियबचन कहि लिये लाइ मन साथ॥११६॥
फिरत नारिनर अति पछिताहीं, दैवहि दोषु देहिं मन माहीं।
सहित बिषाद परसपर कहहीं, बिधिकरतब उलटे सब अहहीं॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू, जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू।
रूखु कलपतरु सागरु खारा, तेहि पठये बन राजकुमारा॥
जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू, कीन्ह बादि बिधि भोगबिलासू।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना, रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुसपाता, सुभगसेज कत सृजत बिधाता।
तरु-तर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा, धवलधाम रचि रचि स्रम कीन्हा

दो० जौं ए मुनि-पट-धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
विविध भाँति भूषन बसन बादि किये करतार ॥१२०॥
जौं ए कंद मूल फल खाहीं, बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये, आपु प्रगट भये बिधि न बनाये ॥
जहँ लगि वेद कही बिधिकरनी, स्रवन नयन मन गोचर बरनी।
देखहु खोजि भुअन दसचारी, कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥
इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा, पटतर जोगु बनावइ लागा।
कीन्ह बहुत स्रम एक न आये, तेहि इरिषा बन आनि दुराये।
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं, आपुहिं परम धन्य करि मानहिं।
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे, जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥
दो० एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर ॥१२१
नारि सनेह विकलबस होहीं, चकई साँझ समय जनु सोहीं।
मृदु-पद-कमल कठिन मगु जानी, गहबरि हृदय कहहिं बरबानी ॥
परसत मृदुलचरन अरुनारे, सकुचति महि जिमि हृदय हमारे।
जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा, कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥
जौं माँगा पाइय बिधि पाहीं, ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं।
जे नरनारि न अवसर आये, तिन्ह सिय रामु न देखन पाये ॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई, अब लगि गये कहाँ लगि भाई।
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई, प्रमुदित फिरहिं जनमुफलु पाई ॥
दो० अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि राम जहाँ जहँ जाहिं ॥१२२॥
गाँव गाँव अस होइ अनंदू, देखि भानु-कुल-कैरव-चंदू।
जे यह समाचार सुनि पावहिं, ते नृपरानिहिं दोषु लगावहिं ॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू, दीन्ह हमहि जेहि लोचनलाहू।
कहहिं परसपर लोग लुगाई, बातें सरल सनेह सुहाई ॥

पितु मातु धन्य जिन्ह जाये, धन्य सो नगरु जहाँ ते आये।
धन्य सो देसु सैलु वन गाऊँ, जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥
सुख-पायउ बिरंचि रचि तेही, ए जेहि के सब भाँति सनेही।
राम-लषन-पथि-कथा सुहाई, रही सकल मग कानन छाई॥
दो०— एहि बिधि रघु कुल-कमल-रवि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय-सौमित्रि समेत॥ १२३॥
आगे रामु लषनु बने पाछे, तापसबेषु बिराजत काछे।
उभय बीच सिय सोहति कैसी, ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसी॥
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई, जनु मधु मदन-मध्य रति लसई
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही, जनु बुध बिधु-बिच रोहिनि सोही
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता, धरति चरन मग चलति सभीता।
सीय-राम - पद - अंक बराये, लषनु चलहिं मगु दाहिन बायें॥
राम-लषन सिय-प्रीति सुहाई, बचनअगोचर किमि कहि जाई।
खग मृग मगन देखि छबि होंही, लिये चोरि चित राम बटोही॥
दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सियसमेत दोउ भाइ।
भव-मगु अगम अनंद तेइ बिनु स्रमु रहे सिराइ॥१२४
अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ, बसहिं लषन-सिय-रामु बटाऊ।
राम-धाम-पथु पाइहिं सोई, जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई॥
तब रघुबीर स्रमित सिय जानी, देखि निकट बटु सीतल-पानी।
तहँ बसि कंद मूल फल खाई, प्रात नहाइ चले रघुराई॥
देखत बन सर सैल सुहाये, बालमीकिआस्रम प्रभु आये।
रामु दीख मुनिबास सुहावन, सुन्दर गिरि कानन जलु पावन॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले, गुञ्जत मंजु मधुप रस भूले।
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं, बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥
दो०—सुचि सुन्दर आस्रमु निरखि हरषे राजिवनैन।
सुनि रघु-बर-आगमनु मुनि आगे आयउ लैन॥ १२५॥

मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा, आसिरबाद बिप्रबर दीन्हा।
देखि रामछबि नयन जुडाने, करि सनमानु आस्रमहिं आने॥
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाये, तब मुनि आसन दिये सुहाये।
कंद मूल फल मधुर मँगाये, सिय सौमित्रि राम फल खाये॥
बालमीकि मन आनद भारी, मंगलमूरति नयन निहारी।
तब करकमल जोरि रघुराई, बोले बचन स्रवन-सुख दाई॥
तुम्ह त्रि-काल दरसी मुनिनाथा, बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी, जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी॥
दो०—तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्यप्रभाउ॥ १२६॥
देखि पाय मुनिराय तुम्हारे, भये सुकृत सब सुफल हमारे।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेग न पावइ कोई॥
मुनि तापस जिन्ह ते दुख लहहीं, ते नरेस बिनु पावक दहहीं।
मङ्गलमूल बिप्रपरितोषू, दहइ कोटि कुल भू-सुर-रोषू॥
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाउँ, सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाउँ।
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला, बासु करउँ कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबरबानी, साधु साधु बोले मुनि ग्यानी।
कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू, तुम्ह पालक सतत स्रुतिसेतू॥
छन्द—स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लपन स-चराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल-निसिचर अनी॥
सो०—राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥१२७॥
जगुपेखन तुम्ह देखनिहारे, बिधि-हरि-संभु नचावनिहारे।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा, अउर तुम्हहिं को जाननिहारा॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई।
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन, जानहिं भगत भगत-उरचंदन॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी, बिगतबिकार जान अधिकारी।
नरतनु धरेउ संत-सुर काजा, कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे, जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा, जस काछिय तस चाहिय नाचा॥
दो० पूछेहु मोहि कि रहउँ कहँ मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ॥१२८॥

सुनि मुनिबचन प्रेमरस साने, सकुचि राम मन महँ मुसुकाने।
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी, बानी मधुर अमिय रस बोरी॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता, जहाँ बसहु सिय-लषन-समेता।
जिन्ह के स्रवन समुद्रसमाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे, तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे, रहहिं दरसजलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी, रूपबिंदु जल होहिं सुखारी।
तिन्ह के हृदयसदन सुखदायक, बसहु बंधु-सिय-सह रघुनायक॥
दो० जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु॥१२९॥

प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुबासा, सादर जासु लहइ नित नासा।
तुम्हहिं निवेदित भोजनु करहीं, प्रभुप्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी, प्रीतिसहित करि बिनय बिसेखी।
कर नित करहिं रामपद पूजा, रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं, राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा, पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना, बिप्र जेवाँय देहिं बहु दाना।
तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिय जानी, सकल भाय सेवहिं सनमानी॥

दो० सब करि माँगहि एकु फलु राम-चरन-रति होउ।
तिन्ह के मनमन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ ॥ १३० ॥

काम कोह मद मान न मोहा, लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया, तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी, दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।
कहहिं सत्य प्रियबचन बिचारी, जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छांडि गति दूसरि नाहीं, राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।
जननीसम जानहिं परनारी, धनु पराव बिष ते बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी, दुखित होहिं परबिपति बिसेखी।
जिनहिं राम तुम्ह प्रान पियारे, तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे ॥

दो० स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मनमन्दिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३१॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं, बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।
नीतिनिपुन जिन्हकइ जग लीका, घर तुम्हार तिन्हकर मन नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा, जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही, तेहि उरबसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरम बड़ाई, प्रिय परिवार सदनु सुखदाई।
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउलाई, तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना, जहँ तहँ देख धरे धनुबाना।
करम-बचन-मन राउर चेरा, राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

दो० जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥१३२॥

एहिबिधि मुनिवर भवन देखाये, बचन सप्रेम राममन भाये।
कहमुनि सुनहु भानु कुल-नायक, आश्रमु कहउं समय सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू, तहं तुम्हार सब भाँति सुपासू।
सैल सुहावन कानन चारू, करि-केहरि-मृग-बिहग बिहारू ॥

नदी पुनीत पुरान बखानी, अत्रिप्रिया निज-तप-बल आनी।
सुरसरिधार नाउं मन्दाकिनि, जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि ॥
अत्रि-आदिमुनि-वर बहुबसहीं, करहिं जोग जप तप तन कसहीं।
चलहु सफलस्रम सबकर करहू, राम देहु गौरव गिरिवरहू ॥
दो० चित्रकूट-महिमा-अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरितवर सिय समेत दोउ भाइ ॥१३३॥

रघुवर कहेउ लषन भल घाटू, करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।
लखन दीख पय उतर करारा, चहुँदिसि फिरेउ धनुप जिमिनारा ॥
नदी पनच सर सम दम दाना, सकलकलुप कलिसाउज नाना।
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी, चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥
अस कहि लपन ठाँव देखरावा, थलु विलोकि रघुवर सुखुपावा।
रमेउ राममन देवन्ह जाना, चले सहित सुरपति परधाना ॥
कोल-किरात-वेष सब आये, रचे परन-तृन-सदन सुहाये।
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला, एक ललित लघु एक बिसाला ॥
दो० लषन-जानकी-सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनिबेष जनु रति-रितु राज समेत ॥१३४॥

अमर नाग किन्नर दिसिपाला, चित्रकूट आये तेहि काला।
रामु प्रनाम कीन्ह सब काहू, मुदित देव लहि लोचनलाहू ॥
बरषि सुमन कह देव समाजू, नाथ सनाथ भये हम आजू।
करि बिनती दुख दुसह सुहाये, हरपित निज-निज सदन सिधाये
चित्रकूट रघुनन्दन छाये, समाचार सुनि-सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनिवृन्दा, कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा ॥
मुनि रघुवरहिं लाइ उर लेहीं, सुफल होन हित आसिष देहीं।
सिय सौमित्रि-राम-छवि देखहिं, साधनसकलसफल करि लेखहिं॥
दो० जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किये मुनिवृन्द।
करहिं जोग जप जागतप निज आस्रमनि सुछन्द ॥१३५॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई, हरषे जनु नवनिधि घर आई।
कन्दमूल फल भरि भरि दोना, चले रंक जनु लूटन सोना॥
तिन्ह महं जिन्ह देखे दोउ भ्राता, अपरतिन्हहिं पूछहिं मगजाता।
कहत सुनत रघुबीर निकाई, आइ सबन्हि देखे रघुराई॥
करहिं जोहारु भेट धरि आगे, प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे।
चित्र लिखे जनु जहं तहं ठाढे, पुलक सरीर नयन जल बाढे॥
राम सनेहमगन सब जाने, कहि प्रियवचन सकल सनमाने।
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी, बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥
दो०--अब हम नाथ सनाथ सब भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय॥ १३६॥
धन्य भूमि बन पंथ पहारा, जहं जहं नाथ पाउ तुम्ह धारा।
धन्य बिहंग मृग काननचारी, सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा, दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा।
कीन्ह बासु भल ठाउ बिचारी, इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करबि सेवकाई, करि-केहरि-अहि-बाघ बराई।
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा, सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जह तहं तुम्हहिं अहेर खेलाउब, सर निरझर भल ठाउ देखाउब।
हम सेवक परिवारसमेता, नाथ न सकुचब आयसु देता॥
दो० बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालकबैन॥१३७॥
रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि लेउ जो जाननिहारा।
राम सकल-बन-चर तब तोषे, कहि मृदुबचन प्रेम परिपोषे।
बिदा किये सिरुनाइ सिधाये, प्रभुगुन कहत सुनत घर आये।
एहि बिधि सियसमेत दोउ भाई, बसहिं बिपिन सुर-मुनि-सुख-दाई
जब ते आइ रहे रघुनायक, तब ते भयउ बनु मंगलदायक।
फूलहि फलहिं बिटप बिधि नाना, मंजु-बलित-बर-बेलि-बिताना॥

सुर-तरु-सरिस सुभाय सुहाये, मनहुँ विबुधवन परिहरि आये।
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी, त्रिविध बयारि बहइ सुखदेनी॥
दो० नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं विहग स्रवनसुखद चितचोर॥१३८॥
करि केहरि कपि कोल कुरंगा, बिगतबैर बिचरहिं सब संगा।
फिरत अहेर रामछबि देखी, होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी॥
विबुधविपिन जहँ लगि जग माहीं, देखि रामवन सकल सिहाहीं।
सुरसरि सरसइ दिनकर-कन्या, मेकलसुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना, मंदाकिनि कर करहिं बखाना।
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू, मंदर मेरु सकल-सुर-बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते, चित्रकूटजसु गावहिं तेते।
बिंध मुदितमन सुखु न समाई. स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥
दो० चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिनराति॥१३९
नयनवंत रघुवरहिं बिलोकी, पाइ जनमफल होहिं बिसोकी।
परसि चरनरज अचर सुखारी, भये परमपद के अधिकारी॥
सो बनु सैल सुभाय सुहावन, मंगलमय अति-पावन-पावन।
महिमा कहिय कवन बिधि तासू, सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥
पयपयोधि तजि अवध बिहाई, जहँ सिय-लषनु-रामु रहे आई।
कहि न सकहिं सुखुमा जसि कानन, जौं सत सहस होहिं सहसानन
सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं, डाबरकमठ कि मंदर लेहीं।
सेवहिं लषनु करम-मन-बानी, जाइ न सील सनेहु बखानी॥
दोहा छिनु छिनु लखि सिय-राम-पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लषनु चित बंधु-मातु-पितु-गेहु॥१४०॥
रामसंग सिय रहति सुखारी, पुर-परिजन-गृह-सुरति बिसारी।
छिनु छिनु पिय-बिधु-बदनु निहारी, प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी॥

नाहनेह नित बढ़त बिलोकी, हरषित रहति दिवस जिमि कोकी।
सियमन रामचरन अनुरागा, अवध-सहस-सम बनु प्रिय लागा॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा, प्रिय परिवारु कुरंग बिहगा।
सासु-ससुर-सम मुनितिय मुनिवर, असन अमियसम कंद मूल फर
नाथसाथ साथरी सुहाई, मयन - सयन - सय सम सुखदाई।
लोकप होहिं बिलोकत जासू, तेहि कि मोह सक बिषय बिलासू॥
दो० सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृनसम बिपय बिलासु।
रामप्रिया जग-जननि सिय कछु न आचरजु तासु॥१४१
सीयलषन जेहि बिधि सुख लहहीं, सोइ रघुनाथु करहिं सोइ कहहीं
कहहिं पुरातन कथा कहानी, सुनहिं लषनु सिय अति सुखुमानी॥
जब जब राम अवध सुधि करही, तब तब बारि बिलोचन भरहीं।
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई, भरत-सनेहु-सील-सेवकाई॥
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी, धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी।
लखि सिय लषनु बिकल होइ जाहीं, जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं
प्रिया-बंधु-गति लखि रघुनंदनु, धीर कृपाल भगत - उर - चंदनु।
लगे कहन कछु कथा पुनीता, सुनि सुखु लहहिं लषनु अरु सीता॥
दो०--रामु लषय-सीता-सहित सोहत परननिकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची-जयत-समेत॥
जोगवहिं प्रभु सियलषनहिं कैसे, पलक बिलोचन गोलक जैसे।
सेवहिं लषन सीय-रघुबीरहिं, जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी, खग-मृग-सुर-तापस-हित-कारी
कहेउँ राम-बन गवन सुहावा, सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा।
फिरेउ निषादु प्रभुहिं पहुँचाई, सचिव सहित रथ देखेसि आई।
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू, कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥
राम राम सिय लषन पुकारी, परेउ धरनितल ब्याकुल भारी।
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं, जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं

दो०— नहिं तृन चरहिं न पियहिं जलु मोचहिं लोचन वारि ।
व्याकुल भयउ निषाद तब रघु-बर बाजि निहारि ॥१४३॥

धरि धीरजु तब कहइ निषादू, अब सुमंत परिहरहु बिषादू ।
तुम्ह पंडित परमारथग्याता, धरहु धरी लखि बिमुख बिधाता ॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदुबानी, रथ बैठारेउ बरबस आनी ।
सोकसिथिल रथु सकइ न हाँकी, रघु-बर-बिरह-पीर उर बाँकी ॥
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे, बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे ।
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे, रामबियोग बिकल दुख तीछे ॥
जो कह रामु लषनु बैदेही, हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ।
बाजिबिरहगतिकहिकिमिजाती, बिनुमनिफनिकबिकल जेहिंभाँती ॥

दो० भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग ।
बोलि सुसेवक चारि तब दिये सारथी-संग ॥१४४॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई, बिरहबिषादु बरनि नहिं जाई ।
चले अवध लेइ रथहि निषादा, होहिं छनहि छनमगन बिषादा ॥
सोच सुमंत्र बिकल दुखदीना, धिग जीवन रघुबीर-बिहीना ।
रहिहि न अंतहु अधमु सरीरू, जस न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भये अजस अघ-भाजन प्राना, कवन हेतु नहिं करत पयाना ।
अहह मंद मनु अवसर चूका, अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई, मनहुँ कृपिन धनरासि गवाँई ।
बिरद बाँधि बरबीरु कहाई, चलउ समर जनु सुभट पराई ॥

दो०—बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४५॥

जिमि कुलीनतिय साधु सयानी, पतिदेवता करम - मन - बानी ।
रहइ करमबस परिहरि नाहू, सचिवहृदय तिमि दारुनदाहू ॥
लोचन सजल डीठि भइ थोरी, सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी ।
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी, जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥

बिबरन भयउ न जाइ निहारी, मारेसि मनहुँ पिता महतारी।
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी, जम-पुर-पथ सोच जिमि पापी॥
बचनु न आव हृदय पछिताई, अवध काह मैं देखब जाई।
रामरहित रथु देखहि जोई, सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥
दो० धाइ पूछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नरनारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब हृदय बज्रु बैठारि॥१४६॥
पुछिहहिं दीनदुखित जब माता, कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता।
पूछिहि जबहिं लषनमहतारी, कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥
रामजननि जब आइहि धाई, सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई।
पूछत उतर देब मैं तेही, गे बनु राम लषनु बैदेही॥
जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देबा, जाइ अवध अब यह सुख लेबा।
पुछिहहि जबहिं राउ दुखदीना, जिवन जासु रघुनाथ अधीना॥
देइहउँ उतरु कवन मुँह लाई, आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई।
सुनत लषन-सिय-राम-सँदेसू, तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥
दो०- हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यह जातना सरीरु॥१४७॥
एहि बिधि करत पथ पछितावा, तमसातीर तुरत रथु आवा॥
बिदा किये करि बिनय निषादा, फिरे पाँय परि बिकल बिषादा॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई, जनु मारेसु गुरु-बाँभन-गाई।
बैठि बिटपतर दिवस गवाँवा, साँझ समय तब अवसरु पावा॥
अवधप्रवेसु कीन्ह अँधियारे, पैठि भवन रथु राखि दुआरे।
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये, भूपद्वार रथु देखन आये॥
रथ पहिचानि बिकल लखि घोरे, गरहिं गात जिमि आतप ओरे।
नगर-नारि-नर ब्याकुल कैसे, निघटत नीर मीनगन जैसे॥
दो०--सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेतनिवासु॥१४८॥

अति आरति सब पूछहिं रानी, उतरु न आव बिकल भइ बानी।
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा, कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा॥
दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई, कौसल्यागृह गईं लेवाई।
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा, अमियरहित जनु चंदु बिराजा॥
आसन सयन-बिभूषन-हीना, परेउ भूमितल निपट मलीना।
लेइ उसासु सोच एहि भाँती, सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती, जनु जरि पंख परेउ संपाती।
राम राम कह राम सनेही, पुनि कह रामु लषन बैदेही॥
दो० देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत कहँ रामु॥१४९॥
भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई, बूडत कछु अधार जनु पाई।
सहित सनेह निकट बैठारी, पूछत राउ नयन भरि बारी॥
रामकुसल कहु सखा सनेही, कहँ रघुनाथ लषनु बैदेही।
आने फेर कि बनहिं सिधाये, सुनत सचिवलोचन जल छाये॥
सोक बिकल पुनि पूछ नरेसू, कहु सिय-राम - लषनु - संदेसू।
राम-रूप-गुन-सील - सुभाऊ, सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥
राज सुनाइ दीन्ह बनबासू, सुनि मन भयउ न हरष हरासू।
सो सुत बिछुरत गये न प्राना, को पापी बड़ मोहि समाना॥
दो० सखा रामु-सिय-लषनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ॥१५०॥
पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ, प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ।
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ, राम-लषनु सिय नयन देखाऊ॥
सचिव धीर धरि कह मृदुबानी, महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी।
बीर सुधीर धुरंधर देवा, साधुसमाज सदा तुम्ह सेवा॥
जनम मरन सब दुख सुख भोगा, हानिलाभु प्रियमिलन बियोगा।
काल करम बस होहिं गोसाईं, बरबस राति दिवस की नाईं॥

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं, दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं।
धीरजु धरहु बिबेक बिचारी, छाड़िय सोचु सकल हितकारी॥
दो० प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपान करि सियसमेत दोउ बीर॥१५१॥
केवट कीन्ह बहुत सेवकाई, सो जामिनि सिंगरौर गवाँई।
होत प्रात बटछीर मँगावा, जटामुकुट निज सीस बनावा॥
रामसखा तब नाव मँगाई, प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई।
लषन बानधनु धरे बनाई, आपु चढ़े प्रभुआयसु पाई॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा, बोले मधुरबचन धरि धीरा।
तात प्रनाम तात सन कहहू, बार बार पदपंकज गहहू॥
करबि पाय परि बिनय बहोरी, तात करिय जनि चिंता मोरी।
बनमग मंगल कुसल हमारे, कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे॥
छं०-तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहउँ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहउँ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी॥
सो०-गुरु सन कहब सँदेसु बार बार पदपदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति॥१५२॥
पुरजन परिजन सकल निहोरी, तात सुनायेहु बिनती मोरी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी, जा तें रह नरनाहु सुखारी॥
कहब सँदेसु भरत के आये, नीति न तजिय राजपद पाये।
पालेहु प्रजहि करम मन बानी, सेयेहु मातु सकल सम जानी॥
अउर निबाहेहु भायप भाई, करि पितु-मातु सुजन सेवकाई।
तात भाँति तेहि राखब राऊ, सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥
लषन कहे कछु बचन कठोरा, बरजि राम पुनि मोहि निहोरा।
बारबार निज सपथ देवाई, कहबि न तात लषनलरिकाई॥

दो० कहि प्रनाम कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित वचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह ॥१५३॥
तेहि अवसर रघुवर रुख पाई, केवट पारहिं नाव चलाई।
रघु-कुल तिलक चले एहि भाँती, देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू, जियत फिरउँ लइ रामसँदेसू।
असकहि सचिव वचनरहि गयऊ, हानिगलानि सोचवस भयऊ॥
सूत वचन सुनतहि नरनाहू, परेउ धरनि उर दारुनदाहू।
तलफत विसम मोह मन मापा, माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा॥
करि विलाप सब रोवहिं रानी। महाविपति किमि जाइ बखानी।
सुनि विलाप दुखहू दुख लागा, धीरजहू कर धीरजु भागा॥
दो० भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
विपुल विहगवन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु ॥१५४॥
प्रान कंठगत भयउ भुआलू, मनिविहीन जनु व्याकुल व्यालू।
इंद्री सकल विकल भइ भारी, जनु सर सरसिज-वन विनु वारी॥
कौसल्या नृपु दीख मलाना, रवि-कुल-रवि अथयेउ जिय जाना।
उर धरि धीर राम महतारी, वोली वचन समय अनुसारी॥
नाथ समुझि मन करिय विचारू, राम-वियोग-पयोधि अपारू।
करनधार तुम्ह अवधजहाजू, चढ़ेउ सकल प्रिय-पथिक-समाजू॥
धीरजु धरिय त पाइय पारू, नाहिं त वूड़िहि सब परिवारू।
जौ जिय धरिय विनय पिय मोरी, रामु लषनु सिय मिलहिं वहोरी॥
दो० प्रिया वचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचेउ सीतलवारि ॥ १५५ ॥
धरि धीरजु उठि वैठि भुआलू, कहु सुमंत्र कहँ रामु कृपालू।
कहाँ लषनु कहँ रामुसनेही, कहँ प्रिय पुत्रवधू वैदेही॥
विलपत राउ विकल वहु भाँती, भइ जुगसरिस सिराति न राती।
तापस-अंध-साप सुधि आई, कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥

भयउ बिकल बरनत इतिहासा, रामरहित धिग जीवनआसा ।
सो तनु राखि करब मैं काहा, जेहिं न प्रेमपनु मोर निबाहा ॥
हा रघुनंदन प्रानपिरीते, तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते ।
हा जानकी लषन हा रघुबर, हा पितु-हित चित-चातक-जलधर ॥
दो० राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबरबिरह राउ गयउ सुरधाम ॥१५६॥
जियन मरन फलु दसरथ पावा, अंड अनेक अमल जसु छावा ।
जियत राम-बिधु-बदनु निहारा, रामबिरह करि मरनु सँवारा ॥
सोकबिकल सब रोवहिं रानी, रूप सीलु बलु तेजु बखानी ।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा, परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी, घर घर रुदनु करहिं पुरबासी ।
अथयेउ आजु भानु-कुल-भानू, धरमअवधि गुन-रूप-निधानू ॥
गारी सकल कैकइहि देहीं, नयनबिहीन कीन्ह जग जेहीं ।
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी, आये सकल महामुनि ग्यानी ॥
दो० तब बसिष्ठ मुनि समयसम कहि अनेक इतिहास ।
सोक नेवारेउ सबहिं कर निज बिग्यान प्रकास ॥१५७॥
तेल नाव भरि नृपतनु राखा, दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ।
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू, नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई, गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई ।
सुनि मुनिआयसु धावन धाये, चले बेग बर बाजि लजाये ॥
अनरथु अवध अरंभेउ जब ते, कुसगुन होहिं भरत कहँ तब ते ।
देखहिं राति भयानक सपना, जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना, सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ।
मागहिं हृदय महेस मनाई, कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥
दो० एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ ।
गुरुअनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥१५८॥

चले समीरवेग हय हाँके, नाँघत सरित सैल वन बाँके।
हृदय सोचु वड कछु न सोहाई, अस जानहिं जिय जाउं उड़ाई॥
एक निमेष वरषसम जाई, एहि विधि भरत नगर नियराई।
असगुन होहिं नगर पैठारा, रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला, सुनि सुनि होइ भरतमन सूला॥
श्रीहत सर सरिता वन वागा, नगरु विसेषि भयावन लागा॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोये, राम-वियोग-कुरोग विगोये।
नगर-नारि-नर निपट दुखारी, मनहु सवन्हि सव संपति हारी॥
दो०- पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं भय विषादु मन माहिं॥१५९॥
हाट वाट नहिं जाहिं निहारी, जनु पुर दह दिसि लागि दवारी।
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि, हरषी रवि-कुल जलरुह-चंदिनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई, द्वारहिं भेटि भवन लेइ आई।
भरत दुखित परिवारु निहारा, मानहुँ तुहिन वनजवनु मारा॥
कैकेई हरषित एहि भांती, मनहुँ मुदित दव लाइ किराती।
सुतहि ससोच देखि मनु मारे, पूछति नैहर कुसल हमारे॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई, पूछी निज कुल-कुसल भलाई।
कहु कह तात कहाँ सव माता, कहं सिय रामु लषन प्रियभ्राता॥
दो०--सुनि सुतवचन सनेहमय कपटनीर भरि नैन।
भरत-स्रवन-मन-सूल सम पापिनि वोली वैन॥१६०॥
तात वात मैं सकल सवाँरी, भइ मंथरा सहाय विचारी।
कछुक काज विधि वीच विगारेउ, भूपति सुरपति-पुर पगु धारेउ॥
सुनत भरत भय विवस विषादा, जनु सहमेउ करि केहरिनादा।
तात तात हा तात पुकारी, परे भूमितल व्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायउँ तोही, तात न रामहिं सौंपेहु मोही।
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी, कहु पितुमरन हेतु महतारी॥

सुनि सुतवचन कहति कैकेई, मरमु पाछि जनु माहुर देई ।
आदिहु ते सब आपनि करनी, कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥
दो० भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम-बन गौन ।
　　हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौन ॥१६१॥
बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति, मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ।
तात राउ नहिं सोचन जोगू, बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥
जीवत सकल जनम फल पाये, अंत अमर-पति-सदन सिधाये ॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू, सहित समाज राज पुर करहू ॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू, पाके छत जनु लाग अँगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा, पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ॥
जौ पै कुरुचि रही अति तोही, जनमत काहे न मारेसि मोही ।
पेड़ु काटि तैं पालउ सींचा, मीनजियन निति बारि उलीचा ॥
दो० हंसबंस दसरथु जनकु राम लषन से भाइ ।
　　जननी तूं जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६२॥
जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ, खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा, गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही, मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही ।
बिधिहु न नारि हृदयगति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥
सरल सुशील धरमरत राऊ, सो किमि जानइ तीयसुभाऊ ।
अस को जीव जंतु जग माहीं, जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं ॥
भे अति अहित रामु तेउ तोही, को तूं अहसि सत्य कहु मोही ।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई, आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥
दो०- राम-बिरोधी-हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।
　　मो समान को पातकी बादि कहउं कछु तोहि ॥१६३॥
सुनि सत्रुघन मातुकुटिलाई, जरहि गात रिस कछु न बसाई ।
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई, बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥

लखि रिस भरेउ लषन-लघु-भाई, बरत अनल घृतआहुति पाई।
हुमगि लात तकि कूबर मारा, परि मुह भरि महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू, दलितदसन मुख रुधिरप्रचारू।
आह दइय मैं काह नसावा, करत नीक फल अनइस पावा॥
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी, लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई, कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥
दो०— मलिनबसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुखभारु।
कनक-कलप-बर-बेलि-बन मानहुँ हनी तुसारु॥१६४॥
भरतहिं देखि मातु उठि धाई, मुरुछित अवनि परी झइ आई।
देखत भरतु बिकल भये भारी, परे चरन तनदसा बिसारी॥
मातु तात कहं देहि देखाई, कहं सिय रामु लषनु दोउ भाई।
कैकइ कत जनमी जग माँझा, जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा॥
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही, अपजस-भाजन प्रिय-जन द्रोही।
को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी, गति असि तोरि मातु जेहि लागी।
पितु सुरपुर बन रघु-बर केतू, मैं केवल सब अनरथहेतू।
धिग मोहि भयउं बेनु-बन आगी, दुसह-दाह-दुख दूषन-भागी॥
दो०—मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥१६५॥
सरल सुभाय माय हिय लाये, अति हित मनहुँ राम फिरि आये।
भेंटेउ बहुरि लषनु लघु-भाई, सोकु सनेहु न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई, राममातु अस काहे न होई।
माता भरतु गोद बैठारे, आँसु पोंछि मृदुबचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरजु धरहू, कुसमउ समुझि सोक परिहरहू।
जनि मानहु हिय हानि गलानी, काल करम-गति अघटित जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता, भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता।
जो एतेहु दुख मोहि जियावा, अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥

दो०—पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर ॥१६६॥
मुख प्रसन्न मन राग न रोषू, सब कर सब बिधि करि परितोषू।
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी, रहइ न राम-चरन-अनुरागी ॥
सुनतहि लखनु चले उठि साथा, रहहिं न जतन किये रघुनाथा।
तब रघुपति सबही सिरु नाई, चले संग सिय अरु लघु भाई ॥
रामु लखनु सिय बनहि सिधाये, गइउँ न संग न प्रान पठाये।
यह सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे, तउ न तजा तनु प्रान अभागे ॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी, रामसरिस सुत मैं महतारी।
जिअइ मरइ भल भूपति जाना, मोर हृदय सत-कुलिस-समाना ॥
दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरतसहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोकनिवासु ॥१६७॥
बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई, कौसल्या लिये हृदय लगाई।
भाँति अनेक भरतु समुझाये, कहि बिबेकमय बचन सुनाये ॥
भरतहु मातु सकल समुझाई, कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई।
छलबिहीन सुचि सरल सुबानी, बोले भरत जोरि जुगपानी ॥
जे अघ मातु-पिता सुत मारे, गाइगोठ महि-सुर-पुर जारे।
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे, मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥
जे पातक उपपातक अहहीं, करम-बचन-मन-भव कबि कहहीं।
ते पातक मोहि होहु बिधाता, जौं एहु होइ मोर मत माता ॥
दो०—जे परिहरि हरि-हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर ॥१६८॥
बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं, पिसुन पराय पाप कहि देहीं।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी, बेदबिदूषक बिस्वबिरोधी ॥
लोभी लंपट लोलुपचारा, जे ताकहिं परधनु परदारा।
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा, जौं जननी एहु संमत मोरा ॥

जे नहि साधुसंग अनुरागे, परमारथपथ बिमुख अभागे।
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई, जिन्हहिं न हरि-हर-सुजसु सुहाई॥
तजि स्रुतिपथ बामपथ चलहीं, बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ, जननी जौं यहु जानउँ भेऊ॥
दो० राम भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायु।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय॥१६९॥
राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे, तुम रघुपतिहि प्रान ते प्यारे।
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी, होइ बारिचर बारिबिरागी॥
भये ग्यानु बरु मिटइ न मोहू, तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू।
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं, सो सपनेहु सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाये, थनपय स्रवहिं नयनजल छाये।
करत बिलाप बहुत एहि भांती, बैठेहि बीति गई सब राती॥
बामदेव बसिष्ठ तब आये, सचिव महाजन सकल बोलाये।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे, कहि परमारथ-बचन सुदेसे॥
दो० तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरतु गुरुबचन सुनि करन कहेउ सब काजु॥१७०॥
नृपतनु बेद बिहित अन्हवावा, परमबिचित्र बिमान बनावा।
गहि पग भरत मातु सब राखी, रहीं राम दरसन अभिलाखी॥
चंदन-अगर-भार बहु आये, अमित अनेक सुगंध सुहाये।
सरजुतीर रचि चिता बनाई, जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई॥
एहिबिधि दाहक्रिया सब कीन्ही, बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।
सोधि सुमृति सब बेद पुराना, कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा, तहँ तस सहस भांति सबु कीन्हा।
भये बिसुद्ध दिये सबु दाना, धेनु बाजि गज बाहन नाना॥
दो० सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥१७१॥

पितुहित भरतकीन्हिजसि करनी, सो मुख लाख जाइ नहिंबरनी।
सुदिन सोधि मुनिवर तब आये, सचिव महाजन सकल बोलाये॥
बैठे राजसभा सब जाई, पठये बोलि भरत दो० भाई।
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे, नीति-धरम मय वचन उचारे॥
प्रथमकथा सब मुनिवर बरनी, कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी।
भूप धरमब्रतु सत्य सहारा, जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥
कहत राम-गुन-सील-सुभाऊ, सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ।
बहुरि लखन-सिय-प्रीति बखानी, सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥
दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु,विधि हाथ॥१७२॥
अस विचारि केहि देइय दोषू, ब्यरथ काहि पर कीजिय रोषू।
तात बिचारु करहु मन माहीं, सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं॥
सोचिय बिप्र जो बेदबिहीना, तजि निज धरमु विषय लयलीना।
सोचिय नृपति जोनीति न जाना, जेहि न प्रजाप्रिय प्रानसमाना॥
सोचियबयसु कृपिन धनवानू, जो न अतिथि सिवभगति सुजानू।
सोचिय सूद्र बिप्र-अपमानी, मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिय पुनि पतिबंचक नारी, कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिय बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरुआयसु अनुसरई॥
दो० सोचिय गृही जो मोहवस करइ करमपथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंचरत बिगति बिबेक बिराग॥१७३॥
बैषानस सोइ सोचन जोगू, तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू।
सोचिय पिसुन अकारनक्रोधी, जननि-जनक गुरु बधु-बिरोधी॥
सब बिधि सोचिय परअपकारी, निज तनुपोषक निरदय भारी।
सोचनीय सबही बिधि सोई, जो न छाडि छलु हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ, भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।
भयउ न अहइ न अब होनिहारा, भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥

विधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा, बरनहिं सब दसरथ-गुन-गाथा ॥
दो० कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु ।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअनि सुचि जासु ॥१७४॥
सब प्रकार भूपति बड़भागी, बादि विषाद करिय तेहि लागी ।
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू, सिर धरि राजरजायसु करहू ॥
राय राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा, पितावचन फुर चाहिय कीन्हा ।
तजे रामु जेहि बचनहिं लागी, तनु परिहरेउ रामबिरहागी ॥
नृपहिं वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना, करहु तात पितुवचन प्रवाना ।
करहु सीस धरि भूपरजाई, हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥
परसुराम पितुअग्या राखी, मारी मातु लोक सब साखी ।
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ, पितुअग्या अघ अजसु न भयऊ ॥
दो० अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥१७५॥
अवसि नरेस बचन फुर करहू, पालहु प्रजा सोक परिहरहू ।
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू, तुम्ह कहँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू ॥
बेदबिहित संमत सबही का, जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ।
करहु राज परिहरहु गलानी, मानहु मोर वचन हित जानी ॥
सुनि सुख लहब रामबैदेही, अनुचित कहब न पंडित केही ।
कौसल्यादि सकल महतारी, तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी ॥
परम तुम्हार रामकर जानिहि, सोसब बिधि तुम्हसन भलमानिहि ।
सौंपेहु राज राम के आये, सेवा करेहु सनेह सुहाये ॥
दो० कीजिय गुरुआयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आयें उचित जस तस तब करब बहोरि ॥१७६॥
कौसल्या धरि धीरजु कहई, पूत पथ्य गुरुआयसु अहई ।
सो आदरिय करिय हितमानी, तजिय विषादु कालगति जानी ॥
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू, तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा, तुम्हहीं सुत सब कह अवलंबा ॥
लखि विधि बाम काल कठिनाई, धीरजु धरहु मातु बलि जाई ।
सिर धरि गुरुआयसु अनुसरहू, प्रजा पालि पुर जन-दुखु हरहू ॥
गुरु के वचन सचिव अभिनंदनु, सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ।
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी, सील-सनेह - सरल-रस सानी ॥
छंद-सानी सरलरस मातुबानी सुनि भरतु ब्याकुल भये ।
लोचनसरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये ॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवं सहजसनेह की ॥
सो० भरतु कमल कर जोरि धीर-धुरंधर धीर धरि ।
वचनु अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं ॥१७७॥
मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका, प्रजा सचिव संमत सबही का ।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा, अवसि सीस धरि चाहउं कीन्हा ॥
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-हितबानी, सुनि मन मुदित करिय भलि जानी
उचित कि अनुचित किये बिचारु, धरमु जाय सिर पातकभारू ॥
तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई जो आचरत मोर भल होई ।
जद्यपि यह समुझत हउं नीके, तदपि होत परितोषु न जी के
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू, मोहि अनुहरत सिखावन देहू ।
उतरु देउं छमब अपराधू, दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू ॥
दो० पितु सुरपुर सिय राम बन करन कहहु मोहि राजु ।
एहि ते जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥१७८
हित हमार सिय-पति सेवकाई, सो हरि लीन्ह मातुकुटिलाई ।
मैं अनुमानि दीखि मन माहीं, आन उपाय मोर हित नाहीं ॥
सोकसमाजु राजु केहि लेखे, लषन-राम-सिय पद बिनु देखे ।
बादि बसन बिनु भूषन भारू, बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा, बिनु हरिभगति जाय जप जोगा ।

जाय जीव बिनु देह सुहाई, बादि मोर सब बिनु रघुराई ॥
जाउँ राम पहिं आयसु देहू, एकहि आँक मोर हित एहू।
मोहि नृप करि भल आपन चहहू, सोउ सनेहु जड़ताबस कहहू ॥
दो० कैकइसुअन कुटिल मति रामबिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधमु के राज ॥१७९॥
कहउँ साँचु सब सुनि पतियाहू, चाहिय धरमसील नरनाहू।
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं, रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पापनिवासू, जेहि लगि सीयराम बनबासू।
राय राम कहँ कानन दीन्हा, बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा ॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू, बैठ बात सब सुनउँ सचेतू।
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू, रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥
राम पुनीत बिषयरस रूखे, लोलुप भूमिभोग के भूखे।
कहँ लगि कहउँ हृदयकठिनाई, निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ॥
दो० कारन ते कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥१८०॥
कैकईभव तनु अनुरागे, पाँवर प्रान अघाइ अभागे।
जौं प्रियबिरह प्रान प्रिय लागे, देखब सुनब बहुत अब आगे ॥
लखन-राम-सिय कहँ बन दीन्हा, पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा।
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू, दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू ॥
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू, कीन्ह कैकई सब कर काजू।
एहि तें मोर काह अब नीका, तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥
कैकइजठर जनमि जग माहीं, यह मो कहँ कछु अनुचित नाहीं।
मोरि बात सब बिधिहि बनाई, प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥
दो०—ग्रहग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पियाइय बारुनी कहहु कवन उपचार ॥१८१॥
कैकइसुअन जोग जग जोई, चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।

दसरथ-तनय राम-लघु-भाई, दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका, रायरजायसु सब कहं नीका ।
उतरु देउ केहि बिधि केहि केही, कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥
मोहि कु-मातु-समेत बिहाई, कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई ।
मो बिनु को सचराचर माहीं, जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं ॥
परमहानि सबु कहँ बड़ लाहू, अदिनु मोर नहिं दूषन काहू ।
संसय सील प्रेम बस अहहू, सबुइ उचित सब जो कछु कहहू ॥
दो० राममातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेखि ।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि ॥१८२॥
गुरु बिबेकसागर जगु जाना, जिन्हहि बिस्व कर-बदर-समाना ।
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ । भये बिधि बिमुख बिमुख सब कोउ
परिहरि रामु सीय जग माहीं, कोउ न कहहि मोर मत नाहीं ।
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी, अन्तहु कीच तहाँ जहं पानी ॥
डर न मोहि जगु कहहिं कि पोचू, परलोकहु कर नाहिन सोचू ।
एकइ उर बस दुसह दवारी, मोहि लगि भे सियराम दुखारी ॥
जीवनलाहु लषनु भल पावा, सब तजि रामचरनु मनु लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन-लागी, झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥
दो० आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिर नाइ ।
देखे बिनु रघु-नाथ-पद जिय कै जरनि न जाइ ॥१८३॥
आन उपाउ मोहि नहिं सूझा, को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ।
एकहि आँक इहइ मन माहीं, प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी, भइ मोहि कारन सकल उपाधी ।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी, छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ॥
सीलु सकुच सुठि सरल सुभाऊ, कृपा - सनेह -सदन रघुराऊ ।
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा, मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी, आयसु आसिष देहु सुबानी ।

जेहि सुनि विनय मोहि जनु जानी, आवहिं बहुरि राम रजधानी ॥
दो० जद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठ सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघु-बीर-भरोस ॥१८४॥
भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे, राम-सनेह-सुधा जनु पागे ।
लोग वियोग विषम-विष दागे, मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥
मातु सचिव गुरु पुर-नर-नारी, सकल सनेह बिकल भये भारी ।
भरतहि कहहिं सराहि सराही, राम-प्रेम-मूरति-तनु आही ॥
तात भरत अस काहे न कहहू, प्रानसमान रामप्रिय अहहू ।
जो पाँवर अपनी जड़ताई, तुम्हहिं सुगाइ मातुकुटिलाई ॥
सो सठ कोटिक-पुरुष समेता, बसहिं कलपसत नरकनिकेता ।
अहि-अघ-अवगुन नहिं मनि गहई, हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥
दो० अवसि चलिय बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह ।
सोकसिंधु बूड़त सबहिं तुम्ह अवलंबु दीन्ह ॥१८५॥
भा सब के मन मोदु न थोरा, जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा ।
चलत प्रात लखि निरनउ नीके, भरतु प्रानप्रिय भे सबही के ॥
मुनिहि बंदि भरतहिं सिरुनाई, चले सकल घर बिदा कराई ।
धन्य भरत जीवनु जग माहीं, सीलु सनेह सराहत जाहीं ॥
कहहिं परसपर भा बड़ काजू, सकल चलइ कर साजहि साजू ।
जेहि राखहिं रहु घररखवारी, सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू, को न चहइ जग जीवन-लाहू ।
दो०--जरउ सो संपति सदनसुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ॥१८६॥
घर घर साजहिं वाहन नाना, हरषु हृदय परभात पयाना ।
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू, नगरु बाजि गजु भवनु भँडारू ॥
संपति सब रघुपति कै आही, जौं बिनु जतन चलउँ तजि ताही ।
तौ परिनाम नमोर भलाई, पापसिरोमनि साइँ दोहाई ॥

करइ स्वामिहित सेवकु सोई, दूषन कोटि देइ किन कोई।
अस विचारि सुचि सेवक बोले, जे सपनेहुँ निज धरमु न डोले ॥
कहि सबु धरमु मरमु सब भाखा, जो जेहि लायक सो तहँ राखा।
करि सबु जतनु राखि रखवारे, राममातु पहँ भरत सिधारे ॥
दो० आरत जननी जानि सब भरत सनेहसुजान।
कहेउ बनावन पालकी सजन सुखासन जान ॥१८७॥
चक्क चक्कि जिमि पुर-नर-नारी, चहत प्रात उर आरत भारी।
जागत सब निसि भयउ विहाना, भरत बोलाये सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू, बनहि देब मुनि रामहिं राजू।
वेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे, तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥
अरुधंती अरु अगिनिसमाजू, रथ चढि चले प्रथम मुनिराजू।
विप्रवृंद चढि वाहन नाना, चले सकल तप तेज-निधाना ॥
नगर लोग सब सजि सजि नाना, चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी, चढि चढि चलत भई सब रानी ॥
दो० सौंपि नगर सुचि सेवकन्हि सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब चले भरत दोउ भाइ ॥१८८॥
राम-दरस-बस सब नरनारी, जनु करि करिनि चले तकि वारी।
बन सिय रामु समुझि मन माहीं, सानुज भरत पयादेहि जाहीं ॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे, उतरि चले हय गय रथ त्यागे।
जाइ समीप राखि निज डोली, राममातु मृदुबानी बोली ॥
तात चढहु रथ बलि महतारी, होइहि प्रिय परिवारु दुखारी।
तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू, सकल सोक कृस नहि मग जोगू ॥
सिर धरि वचन चरन सिरु नाई, रथ चढि चलत भये दोउ भाई।
तमसा प्रथम दिवस करि वासू, दूसर गोमतितीर निवासू ॥
दो० पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत रामहित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ॥१८९॥

सई तीर बसि चले बिहाने, सृंगबेरपुर सब नियराने।
समाचार सब सुने निषादा, हृदय बिचार करइ सबिषादा॥
कारन कवन भरत बन जाहीं, है कछु कपटभाउ मन माहीं।
जौं पै जिय न होति कुटिलाई, तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥
जानहिं सानुज रामहि मारी, करउँ अकंटक राजु सुखारी।
भरत न राजनीति उर आनी, तब कलंकु अब जीवनहानी॥
सकल-सुरासुर जुरहिं जुझारा, रामहि समर न जीतनिहारा।
का आचरजु भरतु अस करहीं, नहिं बिषबेलि अमियफल फरहीं॥

दो० अस बिचारि गुह ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु॥१६०॥

होहु सँजोइल रोकहु घाटा, ठाटहु सकल मरइ के ठाटा।
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ, जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरनु पुनि सुरसरि-तीरा, रामकाजु छनभंगु सरीरा।
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू, बड़े भाग असि पाइअ मीचू॥
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी, जस धवलिहउँ भुवन दस चारी।
तजउँ प्रान रघु-नाथ-निहोरे, दुहूँ हाथ मुदमोदक मोरे॥
साधु समाज न जा कर लेखा, राम-भगत महँ जासु न रेखा।
जाय जियत जग सो महिभारू, जननी जौबन-बिटप कुठारू॥

दो० बिगतबिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥१६१॥

बेगहि भाइहु सजहु सँजोऊ, सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा, एकहि एक बढ़ावहिं करषा॥
चले निषाद जोहारि जोहारी, सूर सकल रन रूचइ रारी।
सुमिरि राम-पद-पंकज पनहीं, माथा बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥
अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं, फरसा बाँस सेल सम करहीं।
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े, कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥

निज निज साजु समाजु बनाई, गुह राउतहिं जोहारे जाई।
देखि सुभट सब लायक जाने, लेइ लेइ नाम सकल सनमाने॥
दो० भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥१९२॥
रामप्रताप नाथ बल तोरे, करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे।
जीवत पाउ न पाछे धरहीं, रुंड मुंड-मय मेदिनि करहीं॥
दीख निषादनाथ भल टोलू, कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू।
एतना कहत छींक भइ बायें, कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये॥
बूढ एक कह सगुन बिचारी, भरतहि मिलिय न होइहि रारी।
रामहिं भरत मनावन जाहीं, सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढा, सहसा करि पछिताहिं बिमूढा।
भरत-सुभाउ-सील बिनु बूझे, बड़ि हितहानि जानि बिनु जूझे॥
दो० गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तब तस करिहउँ आइ॥१९३॥
लखब सनेहु सुभाय सुहाये, बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये।
अस कहि भेंट सँजोवन लागे, कंद मूल फल खग मृग माँगे॥
मीन पीन पाठीन पुराने, भरि भरि भार कहारन्ह आने।
मिलन साजु सजि मिलन सिधाये, मंगलमूल सगुन सुभ पाये॥
देखि दूरि ते कहि निज नामू, कीन्ह मुनीसहिं दंडप्रनामू।
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा, भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
रामसखा सुनि स्यंदनु त्यागा, चले उतरि उमगत अनुरागा।
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई, कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥
दो० करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ॥१९४॥
भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती, लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला, सुर सराहिं तेहि बरसहिं फूला॥

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा, जासु छाँह छुइ लेइय सींचा ।
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता, मिलत पुलकपरिपूरित गाता ॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं, तिन्हहिं न पाप-पुंज समुहाहीं ।
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा, कुलसमेत जग पावन कीन्हा ॥
करम-नासु-जलु सुरसरि परई, तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ।
उलटा नामु जपत जगु जाना, बालमीकि भये ब्रह्मसमाना ॥
दो०—स्वपच सबर खस जमन जड पाँवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥१९५॥
नहिं अचरजु जुग जुग चलि आई, केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई ।
राम-नाम-महिमा सुर कहहीं, सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं ॥
रामसखहिं मिलि भरतु सप्रेमा, पूछी कुसल सुमंगल षेमा ।
देखि भरत कर सीलु सनेहु, भा निषाद तेहि समय विदेहू ॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढा, भरतहिं चितवत एकटक ठाढा ।
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी, विनय सप्रेम करत कर जोरी ॥
कुसल मूल पदपंकज पेखी, मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे, सहित कोटि कुल मंगल मोरे ॥
दो० समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जिय जोइ ।
जो न भजइ रघु-बीर-पद जग विधिवंचित सोइ ॥१९६॥
कपटी कायरु कुमति कुजाती, लोक बेद बाहेर सब भाँती ।
राम कीन्ह आपन जबही ते, भयउँ भुवन भूषन तबही ते ॥
देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई, मिलेउ बहोरि भरत-लघु-भाई ।
कहि निषाद निज नामु सुबानी, सादर सकल जोहारी रानी ॥
जानि लषनसम देहिं असीसा, जियहु सुखी सय लाख बरीसा ।
निरखि निषादु नगर-नर-नारी, भये सुखी जनु लषनु निहारी ॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू, भेटेउ रामभद्र भरि बाहू ।
सुनि निषादु निज भाग-बडाई, प्रमुदित मन लै चले लेवाई ॥

दो० सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
वर तरु तर सर बाग बन बास बनायन्हि जाइ ॥१९७॥
सृंगबेरपुर भरत दीख जब, भे सनेहबस अंग सिथिल सब।
सोहत दिये निषादहि लागू, जनु तनु धरे बिनय अनुरागू ॥
एहि बिधि भरत सेनु सब संगा, दीख जाइ जगपावनि गंगा।
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू, भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥
करहिं प्रनामु नगर-नर-नारी, मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी।
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी, राम-चन्द्र-पद-प्रीति न थोरी ॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू, सकल-सुखद सेवक-सुर-धेनू।
जोरि पानि वर माँगउँ एहू, सीय-राम-पद सहज सनेहू ॥
दो० –एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लिवाइ ॥१९८॥
जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा, भरत सोधु सबही कर लीन्हा।
सुरसेवा करि आयसु पाई, राममातु पहिं गे दोउ भाई ॥
चरन चापि कहि कहि मृदुबानी, जननी सकल भरत सनमानी।
भाइहिं सौंपि मातुसेवकाई, आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥
चले सखा कर सों कर जोरे, सिथिल सरीर सनेह न थोरे।
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ, नेकु नयन-मन-जरनि जुडाऊ ॥
जहं सिय रामु लषनु निसि सोये, कहत भरे जल लोचन कोये।
भरतबचन सुनि भयउ बिषादू, तुरत तहाँ लेइ गयउ निषादू ॥
दो०––जहं सिंसुपा पुनीत तरु रघुबर किय बिस्रामु।
अति सनेह सादर भरत कीन्हे दंड प्रनामु ॥१९९॥
कुस साथरी निहारि सुहाई, कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई।
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई, बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥
कनकबिंदु दुइ चारिक देखे, राखे सीस सीयसम लेखे।
सजल बिलोचन हृदय गलानी, कहत सखा सन बचन सुबानी ॥

श्रीहत सीयविरह दुति हीना, जथा अवध नरनारि मलीना।
पिता जनक देउँ पटतर केही, करतल भोग जोग जग जेही॥
ससुर भानु-कुल भानु-भुआलू, जेहि सिहात अमरावतिपालू।
प्रानुनाथ रघुनाथ गोसाईं, जो बड होत सो रामबडाईं॥
दो० पतिदेवता सु-तीय-मनि सीय साथरी देखि।
विहरत हृदय न हहरि हर पवि ते कठिन विसेखि॥२००॥
लालन-जोगु लखन लघु लोने, भे न भाइ अस अहहिं न होने।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे, सिय-रघुबीरहिं प्रानपियारे॥
मृदुमूरति सुकुमार सुभाऊ, ताति वाउ तन लाग न काउ।
ते बन सहहिं विपति सब भाँती, निदरे कोटि कुलिस एहि छाती॥
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर, रूप सील सुख सब गुनसागर।
पुरजन परिजन गुरु पितु माता, रामसुभाउ सबहि सुखदाता॥
बैरिउ रामबडाई करहीं, बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं।
सारद कोटि कोटि सत सेखा, करि न सकहिं प्रभु गुन-गन-लेखा॥
दो० सुखसरूप रघु-बंस-मनि मंगल-मोदनिधान।
ते सोवत कुस डासि महि विधिगति अति बलवान॥२०१॥
राम सुना दुख कान न काऊ, जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ।
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती, जोगवहिं जननि सकल दिनराती॥
ते अब फिरत विपिन पदचारी, कंद-मूल-फल - फूल - अहारी।
धिग कैकेई अमंगलमूला, भइसि प्रान-प्रियतम-प्रतिकूला॥
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी, सबु उतपातु भयउ जेहि लागी।
कुलकलंकु करि सृजेउ विधाता, साइँद्रोह मोहि कीन्ह कुमाता॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू, नाथ करिय कत बादि विषादू।
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं, एह निरजोसु दोसु विधि बामहिं॥
छन्द विधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥

तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौहें किये।
परिनामु मंगलु जानि अपने आनिये धीरजु हिये॥
सो० अंतरजामी राम सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय विस्रामु यह बिचार दृढ़ आनि मन॥२०२॥
सखा वचन सुनि उर धरि धीरा, बास चले सुमिरत रघुबीरा।
यह सुधि पाइ नगर-नर नारी, चले बिलोकन आरत भारी॥
परदच्छिना करि करहिं प्रनामा, देहिं कैकेइहि खोरि निकामा।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं, बाम बिधातहिं दूषन देहीं॥
एक सराहहिं भरतसनेहू, कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू।
निंदहिं आपु सराहि निषादहि, को कहि सकइ बिमोहबिषादहि॥
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसारु गुदारा लागा।
गुरुहिं सुनाव चढाइ सुहाई, नई नाव सब मातु चढाई॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा, उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥
दो० प्रातक्रिया करि मातुपद बंदि गुरुहि सिर नाइ।
आगे किये निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥२०३॥
कियेउ निषादनाथु अगुआई, मातु पालकी सकल चलाई।
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा, बिप्रन्ह सहित गवनु गुरु कीन्हा॥
आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू, सुमिरे लषनसहित सियरामू।
गवने भरत पयादेहि पाये, कोतल संग जाहिं डोरिआये॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा, होइय नाथ अस्व असवारा।
रामु पयादेहि पाय सिधाये, हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा, सब ते सेवकधरमु कठोरा।
देखि भरतगति सुनि मृदुबानी, सब सेवकगन करहिं गलानी॥
दो० भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥२०४॥
झलका झलकत पायन्ह कैसे, पंकजकोस ओसकन जैसे।

भरत पयादेहि आये आजू, भयउ दुखित सुनि सकलसमाजू ॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये, कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहि आये ।
सबिधि सितासित नीर नहाने, दिये दान महिसुर सनमाने ॥
देखत स्यामल-धवल-हिलोरे, पुलकि सरीर भरत कर जोरे ।
सकल-काम-प्रद तीरथराऊ, बेदबिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
मागउँ भीख त्यागि निज धरमू, आरत काह न करइ कुकरमू ।
अस जिय जानि सुजान सुदानी, सफल करहिं जग जाचकबानी ॥
दो० अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति रामपद यह, बरदानु न आन ॥२०५
जानहु रामु कुटिल करि मोही, लोगु कहउ गुरु-साहिब द्रोही ।
सीता-राम-चरन रति मोरे, अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ॥
जलद जनम भरि सुरति बिसारउ, जाचत जलु पबि पाहन डारउ ।
चातकु रटनि घटे घटि जाई, बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे, तिमि प्रिय-तम-पद नेम निबाहे ।
भरतबचन सुनि माँझ त्रिबेनी, भइ मृदुबानि सु-मंगल-देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू, राम-चरन-अनुराग-अगाधू ।
बादि गलानि करहु मन माहीं, तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ॥
दो०—तनु पुलकेउ हिय हरष सुनि बेनिबचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ॥२०६॥
प्रमुदित तीरथ-राज निवासी, बैखानस बटु गृही उदासी ।
कहहिं परस मिलि दस पाँचा, भरत सनेह सीलु सुचि साँचा ॥
सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये, भरद्वाज मुनिबर पहिं आये ।
दंडप्रनामु करत मुनि देखे, मूरतिवत भाग निज लेखे ॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे, दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ।
आसन दीन्ह नाइ सिरु बैठे, चहत सकुच-गृह जनु भजि पैठे ॥
मुनि पूछब किछु यह बड सोचू, बोले रिषि लखि सीलसँकोचू ।

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई, विधिकरतब पर कछु न बसाई ॥
दो० तुम्ह गलानि जिय जनि करहु समुझि मातुकरतूति ।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥२०७॥
यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ, लोकु वेदु बुधसंमत दोऊ ।
तात तुम्हार विमल जसु गाई, पाइहि लोकउ वेदु बड़ाई ॥
लोक-वेद-संमत सब कहई, जेहि पितु देइ राजु सो लहई ।
राउ सत्यव्रत तुम्हहि बोलाई, देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥
रामगवनु वन अनरथमूला, जो सुनि सकल विस्व भइ सूला ।
सो भावीवस रानि अयानी, करि कुचालि अंतहु पछितानी ॥
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू, कहइ सो अधमु अयान असाधू ।
करतेहु राजु त तुम्हहिं न दोषू, रामहिं होत सुनत संतोषी ॥४॥
दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु ।
सकल सुमंगल-मूल-जग रघु-वर-चरन-सनेहु ॥२०८॥
सो तुम्हार धनु जीवनप्राना, भूरि भाग को तुम्हहिं समाना ।
यह तुम्हार आचरजु न ताता, दसरथसुअन राम-प्रिय-भ्राता ॥
सुनहु भरत रघु-पति-मन माहीं, प्रेमपात्रु तुम सम कोउ नाहीं ।
लषन राम सीतहिं अति प्रीती, निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥२॥
जाना मरमु नहात प्रयागा, मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ।
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर के, सुख जीवनजग जस जड़ नर के ॥३॥
यह न अधिक रघुबीरबड़ाई, प्रनत-कुटुंब-पाल रघुराई ॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू, धरे देह जनु रामसनेहू ॥४॥
दो०—तुम कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम-भगति-रस-सिद्ध हित भा यह समय गनेसु ॥२०९॥
नवविधु विमल तात जसु तोरा, रघु-वर-किंकर-कुमुद-चकोरा ।
उदित सदा अथइहि कबहुँ ना, घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना
कोक तिलोक प्रीति अति करही, प्रभुप्रतापरवि छबिहि न हरिही ।

निसि दिन सुखद सदा सब काहू,, ग्रसिहि न कैकइकरतबु राहू ॥
पूरन रामु-सु-प्रेम पियूषा, गुरुअवमान दोख नहिं दूषा।
राममगत अब अमिय अघाहू, कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू ॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी, सुमिरत सकल-सु मंगल-खानी।
दसरथ-गुन-गन बरनि न जाहीं, अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं

दो०—जासु सनेह सकोच-बस रामु प्रगट भये आइ।
जे हर-हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ॥ २१० ॥

कीरति विधु तुम्ह कीन्ह अनूपा, जहँ बस राम-प्रेम-मृग-रूपा।
तात गलानि करहु जिय जाये, डरहु दरिद्रहि पारस पाये ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं, उदासीन तापस बन रहहीं।
सब साधनु कर सुफल सुहावा, लखन-राम-सिय-दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा, सहित प्रयाग सुभाग हमारा।
भरत धन्य तुम्ह जग जस जयऊ, कहि अस प्रेम मगनमुनि भयऊ
सुनि मुनिवचन सभासद हरपे, साधु सराहि सुमन सुर बरपे।
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा, सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा ॥

दो०—पुलकगात हिय राम सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनिमंडलिहिं बोले गदगद बैन ॥ २११॥

मुनिसमाजु अरु तीरथराजू, साचिहु सपथ अघाइ अकाजू।
एहि थल जौंकछुकहिय बनाई, एहि सम अधिक नअघ अधमाई॥
तुम्ह सर्वग्य कहउँ सतिभाऊ, उर - अंतर - जामी रघुराऊ।
मोहि न मातु-करतब कर सोचू, नहि दुख जिय जग जानहिं पोचू
नाहिन डरु बिगरहि परलोकू, पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाये, लछिमन-राम सरिस सुत पाये।
रामबिरह तजि तनु छनभंगू, भूप-सोच कर कवन प्रसंगू ॥
राम-लषन-सिय बिनु पग पनहीं करमुनिबेप फिरहिं बन बनहीं।

दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात ॥
बसि तरुतर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥२१२॥
एहि दुखदाह दहइ दिन छाती, भूख न बासर नींद न राती ।
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं, सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ॥
मातु कुमत बढ़ई अघमूला, तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजन्त्रू, गाडि अवधि पढ़ि कठिन कुमन्त्रू ॥
मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा, घालिसि सबु जगु बारह बाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आये, बसइ अवध नहि आन उपाये ॥
भरतवचन सुनि मुनि सुखु पाई, सबहिं कीन्हि बहु भाति बड़ाई ।
तात करहु जनि सोचु बिसेखी, सब दुख मिटिहि रामपग देखी ॥
दो०—करि प्रबोध मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम देहि लेहु करि छोहु ॥ २१३ ॥
सुनि मुनिबचन भरत हिय सोचू, भयउ कुअवसर कठिन सकोचू ।
जानि गरुइ गुरुगिरा बहोरी, चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा, परमधरम यह नाथ हमारा ।
भरतवचन मुनिवर मन भाये, सुचि सेवक सिष निकट बोलाये ॥
चाहिय कीन्हि भरतपहुनाई, कंद मूल फल आनहु जाई ।
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये प्रमुदित निज निज काज सिधाये ॥
मुनिहि सोचु पाहुन बड नेवता, तसि पूजा चाहिय जस देवता ।
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं, आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥
दो०—रामबिरह व्याकुल भरत सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रमु कहा मुदित मुनिराज ॥ २१४ ॥
रिधि सिधि सिर धरि मुनि-बर-बानी बडभागिनि आपुहि अनुमानी
कहहिं परस्पर सिधिसमुदाई, अतुलित अतिथि राम-लघु-भाई ॥
मुनिपद बंदि करिय सोइ आजू, होइ सुखी सब राजसमाजू ।
अस कहि रचे रुचिर गृह नाना, जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥

भोग विभूति भूरि भरि राखे, देखत जिन्हहिं अमर अभिलाषे।
दासी दास साजु सब लीन्हे, जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे॥
सब समाजु सजि सिधि पल माहीं, जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं।
प्रथमहिं वास दिये सब केही, सुन्दर सुखद जथारुचि जेही॥
दो० बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
विधि-विसमय-दायकु विभव मुनिवर तपबल कीन्ह॥२१५॥
मुनिप्रभाउ जब भरत बिलोका, सब लघु लघे लोकपति लोका।
सुखसमाजु नहिं जाइ बखानी, देखत विरति बिसारहिं ग्यानी॥
आसन सयन सुबसन बिताना, बन बाटिका बिहग मृग नाना।
सुरभि फूल फल अमिय समाना, विमल जलासय बिबिध बिधाना।
असन पान सुचि अमिय अमी से, देखि लोग सकुचात जमी से।
सुरसुरभी सुरतरु सबही के, लखि अभिलाषु सुरेस सची के॥
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी, सब कहं सुलभ पदारथ चारी।
स्रक चंदन बनितादिक भोगा, देखि हरष बिसमय बस लोगा॥
दो०—संपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रमपींजरा राखे भा भिनुसार॥२१६॥
कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा, नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा।
रिषिआयसु असीस सिर राखी, करि दंडवत बिनय बहु भाखी॥
पथ-गति कुसल साथ सब लीन्हे, चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे।
रामसखा कर दीन्हे लागू, चलत देह धरि जनु अनुरागू॥
नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया, प्रेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया।
लषन-राम-सिय-पथ-कहानी, पूछत सखहि कहत मृदुबानी॥
राम-बास-थल-बिटप बिलोके, उर अनुराग रहत नहिं रोके।
देखि दसा सुर बरिषहिं फूला, भइ मृदु महि मग मंगलमूला॥
दो० किये जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बरबात।
तस मग भयउ न राम कहं जस भा भरतहिं जात॥२१७॥

जड़ चेतन मग जीव घनेरे, जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।
ते सब भये परम पद-जोगू, भरतदरस मेटा भवरोगू॥
यह बडि बात भरत कइ नाहीं, सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं।
बारेक राम कहत जग जेऊ, होत तरन-तारन नर तेऊ॥
भरतु राम प्रिय पुनि लघुभ्राता, कस न होइ मगु मंगलदाता।
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं, भरतहि निरखि हरषु हिय लहहीं॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू, जगु भल भलेहि पोच कहं पोचू।
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई, रामहि भरतहिं भेंट न होई॥
दो० रामु संकोची प्रेमबस भरतु सुप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति करिय जतन छल सोधि॥२१८॥
बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने, सहसनयन बिनु लोचन जाने।
कह गुरु बादि छोभु छलु छाँडू, इहाँ कपट कर होइहि भाँडू॥
मायापति-सेवक सन माया, करइ त उलटि परइ सुरराया।
तब किछु कीन्ह रामरुख जानी, अब कुचालि करि होइहि हानी॥
सुनु सुरेस रघुनाथ-सुभाऊ, निज अपराध रिसाहि न काऊ।
जो अपराधु भगत कर करई, राम-रोष-पावक सो जरई॥
लोकहु बेद बिदित इतिहासा, यह महिमा जानहिं दुरबासा।
भरतसरिस को रामसनेही, जगु जप राम रामु जप जेही॥
दो० मनहु न आनिय अमरपति रघु-बर-भगत-अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोकसमाजु॥२१९॥
सुनु सुरेस उपदेसु हमारा, रामहिं सेवकु परमपियारा।
मानत सुखु सेवकसेवकाई, सेवकबैर बैरु अधिकाई॥
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू, गहहिं न पाप पुन्न गुन दोषू।
करम प्रधान बिस्व करि राखा, जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
तदपि करहि सम-बिषम-बिहारा, भगत अभगत हृदय अनुसारा।
अगुन अलेख अमान एकरस, रामु सगुन भये भगतप्रेम-बस॥

राम सदा सेवकरुचि राखी, बेद-पुरान-साधु-सुर-साखी।
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई, करहु भरत-पद-प्रीति सुहाई॥
दो० रामभगत परहितनिरत परदुख दुखी दयाल।
भगतसिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥ २२०॥
सत्यसंध प्रभु सुर-हित-कारी, भरत राम-आयसु-अनुसारी।
स्वारथविबस विकल तुम्ह होहू, भरतदोसु नहिं राउर मोहू॥
सुनि सुरवर सुर-गुरु-बर-बानी, भा प्रमोदु मन मिटी गलानी।
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ, लगे सराहन भरतसुभाऊ॥
एहि विधि भरतु चले मग जाहीं, दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं।
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा, उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना, पुरजन प्रेम न जाइ बखाना।
बीच बास करि जमुनहिं आये, निरखि नीरु लोचन जल छाये॥
दो० रघु-बर-बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥ २२१॥
जमुनितीर तेहि दिन करि बासू, भयउ समयसम सबहिं सुपासू।
रातिहिं घाट घाट की तरनी, आईं अगनित जाहिं न बरनी॥
प्रात पार भये एकहि खेवा, तोषे रामसखा की सेवा।
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई, साथ निषादनाथु दोउ भाई॥
आगे मुनि-बर-बाहन आछे, राजसमाजु जाइ सबु पाछे।
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे, भूषन बसन बेष सुठि सादे॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा, सुमिरत लषनु सीय रघुनाथा।
जहँ जहँ राम-बास-बिस्रामा, तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥
दो० मगवासी नरनारि सुनि धामकाम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनमफलु पाइ॥ २२२॥
कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं, रामु लषनु सखि होहिं कि नाहीं।
बय बपु बरन रूपु सोइ आली, सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥

बपु न सो सखि सीय न संगा, आगे अनी चली चतुरंगा।
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा, सखि संदेहु होइ यहि भेदा॥
तासु तरक तियगन मन मानी, कहहिं सकल तोहि सम न सयानी।
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी, बोली मधुरबचन तिय दूजी॥
कहि सप्रेम सब कथाप्रसंगू, जेहि बिधि राम राज-रस-भंगू।
भरतहि बहुरि सराहन लागी, सील सनेह सुभाय सुभागी॥
दो० चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं भरतसरिस को आजु॥ २२३॥
भायप भगति भरत-आचरनू, कहत सुनत दुख दूषन-हरनू।
जो किछु कहब थोर सखि सोई, रामबंधु अस काहे न होई॥
हम सब सानुज भरतहिं देखे, भइन्ह धन्य जुबतीजन लेखे।
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं, कैकेइ-जननि-जोगु सुतु नाहीं॥
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन, बिधि सबु कीन्ह हमहिं जो दाहिन।
कहँ हम लोक-बेद-बिधि-हीनी, लघुतिय कुल-करतूति-मलीनी॥
बसहिं कुदेस कुगावँ कुबामा, कहँ यह दरसु पुन्यपरिनामा।
अस अनंदु अचरजु प्रति ग्रामा, जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥
दो०—भरतदरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधिबस सुलभ प्रयागु॥२२४॥
निज-गुन-सहित रामगुन-गाथा, सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।
तीरथ मुनिआश्रम सुरधामा, निरखि निमज्जहिंकरहिंप्रनामा॥
मनहीं मन माँगहिं बरु एहू, सीय-राम-पद-पदुम सनेहू।
मिलहिं किरात कोल बनबासी, बैखानस बटु जती उदासी॥
करि प्रनाम पूछहिं जेहि तेही, केहि बन लखनु रामु बैदेही।
ते प्रभुसमाचार सब कहहीं, भरतहिं देखि जनमफलु लहहीं॥
जे जन कहहिं कुसल हम देखे, ते प्रिय राम-लखन-सम लेखे।
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी, सुनत राम बन-बास-कहानी।

दो०—तेहि वासर वसि प्रातही चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस कीं लालसा भरत सरिस सब साथ ॥२२५॥

मङ्गल सगुन होहिं सब काहू, फरकहिं सुखद विलोचन वाहू।
भरतहि समाज उछाहू, मिलिहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू ॥
करत मनोरथ जस जिय जाके, जाहिं सनेहसुधा सब छाके।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं, बिहबल बचन प्रेमबस बोलहिं
रामसखा तेहि समय देखावा, सैलसिरोमनि सहज सुहावा।
जासु समीप सरित-पय-तीरा, सीयसमेत बसहिं दोउ वीरा ॥
देखि करहिं सब दंडप्रनामा, कहि जय जानकिजीवन रामा।
प्रेममगन अस राजसमाजू, जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेष।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह-मम-मलिन-जनेषु ॥२२६॥

सकल सनेह सिथिल रघुवर के, गये कोस दुइ दिनकर ढरके।
जल थल देखि बसे निसि बीते, कीन्ह गवनु रघु-नाथ-पिरीते ॥
उहाँ रामु रजनी-अवसेखा, जागे सीय सपन अस देखा।
सहित समाज भरत जनु आये, नाथवियोग ताप तन ताये ॥
सकल मलिनमन दीन दुखारी, देखी सासु आन अनुहारी।
सुनि सियसपन भरे जल लोचन, भये सोचबस सोचबिमोचन ॥
लखन सपन यह नीक न होई, कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।
अस कहि बंधु समेत नहाने, पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उत्तर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरदसरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥२२७॥

बहुरि सोच-बस भे सियरवनू, कारन कवन भरतआगमनू।
एक आइ अस कहा बहोरी, सेन सग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू, इत पितुबच इत बंधुसँकोचू।
भरतसुभाउ समुझि मन माहीं, प्रभुचित हितथिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने, भरतु कहे महुँ साधु सयाने।
लषन लखेउ प्रभु हृदय-खभारू, कहत समयसम नीतिबिचारू॥
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं, सेवकु समय न ढीठ ढिठाई।
तुम्ह सबग्य सिरोमनि स्वामी आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥
दो० नाथ सुहृद सुठि सरलचित सील-सनेह-निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपुसमान॥२२८॥
बिषयी जीव पाइ प्रभुताई, मूढ़ मोहबस होहिं जनाई।
भरतु नीतिरस साधु सुजाना, प्रभु पद-प्रेमु सकल जग जाना॥
तेऊ आजु राजपदु पाई, चले धरममरजाद मेटाई।
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी, जानि राम बनबास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू, आये करइ अकंटक राजू।
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई, आये दल बटोरि दोउ भाई॥
जौं जिय होति न कपट कुचाली, केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली।
भरतहि दोष देइ को जाये, जग बौराइ राजपद पाये॥
दो० ससि गुरु-तिय-गामी नहुषु चढेउ भूमि-सुर-जान।
लोकबेद ते बिमुख भा अधम न बेनसमान॥२२६॥
सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू, केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ, रिपु रन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई, निदरे रामु जानि असहाई।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी, समर सरोप रामसुखु पेखी॥
एतना कहत नीतिरस भूला, रन-रस-बिटपु पुलक मिस फूला।
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी, बोले सत्य सहज बल भाखी॥

अनुचित नाथ न मानब मोरा, भरत हमहिं उपचरा न थोरा।
कहँ लगि सहिय रहिय मनु मारे, नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
दो० छत्रि जाति रघु कुल-जनमु राम अनुज जग जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर नीच को धूरिसमान॥ २३०॥
उठि कर जोरि रजायसु मागा, मनहुँ बीर रस सोवत जागा।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा, साजि सरासनु सायकु हाथा॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ, भरतहि समर सिखावन देऊँ।
रामनिरादर कर फलु पाई, सोवहु समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू, प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू।
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू, लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता, सानुज निदरि निपातउँ खेता।
जौं सहाय कर शंकर आई, तौ मारउँ रन राम दोहाई॥
दो० अति सरोष माखे लषनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहति भभरि भगान॥ २३१॥
जगु भयमगन गगन भइ बानी, लषन-बाहु-बलु बिपुल बखानी।
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा, को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काजु कछु होऊ, समुझि करिय भल कह सब कोऊ।
सहसा करि पाछे पछिताहीं, कहहिं बेदबुध बुध ते नाहीं॥
सुनि सुरबचन लषन सकुचाने, राम सीय सादर सनमाने।
कही तात तुम्ह नीक सुहाई, सब ते कठिन राजमदु भाई॥
जो अँचवत माँतहिं नृप तेई, नाहिन साधु सभा जेहि सेई।
सुनहु लषन भल भरतसरीसा, बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा॥
दो०-भरतहि होइ न राजमदु बिधि-हरि-पद पाइ।
कबहुँ कि कांजीसीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥ २३२॥
तिमिर तरुनतरनिहि मकु गिलई, गगन मगन मकु मेघहिं मिलई।
गोपद जल बूडहिं घटजोनी, सहज छमा बरु छाडइ छोनी॥

मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई, होइ न नृपमद भरतहि भाई।
लषन तुम्हार सपथ पितु आना, सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनु खीर अवगुन जलु ताता, मिलइ रचइ परपंच बिधाता।
भरतु हंस रबि-बंस-तड़ागा, जनमि कीन्ह गुन-दोष-बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी, निज जस जगत कीन्हि उजिआरी।
कहत भरत-गुन सील सुभाऊ, प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।
दो०—सुनि रघु-बर-बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥२३३॥
जौं न होत जग जनम भरत को, सकल-धरम-धुर-धरनि धरत को।
कवि-कुल-अगम भरत-गुन-गाथा, को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥
लषनु रामु सिय सुनि सुरबानी, अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी।
इहां भरतु सब सहित सहाये, मंदाकिनी पुनीत नहाये॥
सरित समीप राखि सब लोगा, माँगि मातु-गुरु-सचिव-नियोगा।
चले भरत जहँ सिय रघुराई, साथ निषादनाथु लघु भाई॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं, करत कुतरक कोटि मन माहीं।
रामु-लषनु-सिय सुनि मम नाऊँ, उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥
दो० मातु मते महँ मानि मोहि जो कछु कहहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥२३४॥
जौं परिहरहिं मलिन मन जानी, जौं सनमानहिं सेवक मानी।
मोरे सरन राम की पनहीं, राम सुस्वामि दोष सब जनहीं॥
जग जसभाजन चातक मीना, नेम प्रेम निज निपुन नबीना।
अस मन गुनत चले मग जाता, सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥
फेरति मनहुँ मातुकृत खोरी, चलत भगति बल धीरज धोरी।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ, तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी, जल प्रवाह जल-अलि गति जैसी।
देखि भरत कर सोचु सनेहू, भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु ।
मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम विषादु ॥२३५॥
सेवकवचन सत्य सब जाने, आस्रमनिकट जाइ नियराने ।
भरत दीख वन-सैल-समाजू, मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी, त्रिविध ताप पीडित ग्रहमारी ।
जाइ सुराज सुदेस सुखारी, होहिं भरतगति तेहि अनुहारी ॥
रामवास वनसंपति भ्राजा, सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ।
सचिव विरागु विवेकु नरेसू, विपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जमनियम सैल रजधानी, साँति सुमति सुचि सुन्दर रानी ।
सकल अङ्ग संपन्न सुराऊ, रामचरनआस्रित चित चाऊ ॥
दो०—जीति मोह महिपालु-दल सहित विवेक भुआलु ।
करत अकंटक राज्य पुर सुख संपदा सुकालु ॥२३६॥
वनप्रदेस मुनिवास घनेरे, जनु पुर नगर गाऊँगन खेरे ।
विपुलविचित्र विहग मृग नाना, प्रजासमाज न जाइ बखाना ॥
खँगहा करि हरि बाघ वराहा, देखि महिष वृष साजु सराहा ।
वयरु विहाय चरहिं एक संगा, जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्तगज गाजहिं, मनहुँनिसान विविधविधि वाजहिं ।
चक्रचकोर चातक सुक पिकगन, कूजत मञ्जु मराल मुदितमन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा, जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ।
बेलि विटप तृन सफल सफूला, सब समाजु मुद-मंगल-मूला ॥
दो०—रामसैल सोभा निरखि भरतहृदय अति प्रेमु ।
तापस तपफलु पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु ॥२३७॥
तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई, कहेउ भरत सन भुजा उठाई ।
नाथदेखियहि विटप विसाला, पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु सोहा, मंजु विसाल देखि मनु मोहा ।
नील सघन पल्लवफल लाला, अविचल छाँह सुखद सब काला ॥

मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी, बिरची बिधि सकेलि सुखमासी।
ए तरु सरितसमीप गोसाईं, रघुवर परनकुटी जहँ छाईं ॥
तुलसी तरुवर विविध सुहाये, कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाये।
बटछाया वेदिका बनाई, सिय निज पानि-सरोज सुहाई।'
दो०–जहाँ बैठि मुनि गन-सहित नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥२३८॥
सखावचन सुनि विटप निहारी, उमगे भरत विलोचन वारी।
करत प्रनाम चले दोउ भाई, कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम-पद-अंका, मानहुँ पारसु पायेउ रंका।
रजसिरधरिहियनयनन्हिंलावहिं रघु-बर-मिलन-सरिससुख पावहीं।
देखि भरतगति अकथ अतीवा, प्रेम मगन मृग खग जडजीवा।
सखहिं सनेहविवस मग भूला, कहि सुपथ सुर बरपहिं फूला॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे, सहज सनेह सराहन लागे।
होत न भूलत भाउ भरत को, अचर सचर चाअचरकरत को।
दो०–प्रेमु अमिय मदरु बिरहु भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटे सुर-साधु-हित कृपासिंधु-रघुवीर ॥२३९॥
सखासमेत मनोहर जोटा, लखेउ न लषन सघन बन ओटा।
भरत दीखप्रभुआस्रमु पावन, सकल-सु-मंगल-सदन सुहावन॥
करत प्रवेस मिटे दुखदावा, जनुजोगी परमारथ पावा।
देखे भरत लषनप्रभु आगे, पूछे वचन कहत अनुरागे॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे, तून कसे कर सर धनु काँधे।
वेदी पर मुनि-साधु-समाजू, सीयसहित राजत रघुराजू॥
वलकल वसन जटिलतनुस्यामा, जनु मुनिबेप कीन्ह रतिकामा।
करकमलनि धनु सायकु फेरत, जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।
दो० लसत मंजु मुनि-मंडली-मध्य सीय रघुचन्दु।
ग्यानसभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु ॥२४०॥

सानुज सखा समेत मगन मन, बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख-गन ।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं, भूतल परे लकुट की नाईं ॥
वचन सप्रेमु लषन पहिचाने, करत प्रनामु भरत जिय जाने ।
बंधुसनेह सरस एहि ओरा, इत साहिबसेवा बरुजोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई, सुकवि लषनमन की गति भनई ।
रहे राखि सेवा पर भारू, चढ़ी चग जनु खैंच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा, भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥
दो०—बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान ॥२४१॥
मिलनिप्रीतिकिमि जाइ बखानी, कवि-कुल-अगम करम-मन बानी
परम-प्रेम-पूरन दोउ भाई, मन बुद्धिचित अहमिति बिसराई ॥
कहहु सुप्रेमु प्रगट को करई, केहि छाया कवि मति अनुसरई ।
कबिहि अरथ आखर बलु सांचा, अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।
अगम सनेहु भरत रघुवर को, जहँ न जाइ मनु बिधि-हरिहर को ।
सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती, बाजु सुराग कि गाँडरताँती ॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुवर की, सुरगन सभय धकधकी धरकी
समुझाये सुरगुरु जड जागे, बरषि प्रसून प्रससन लागे ॥
दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भाय भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ॥२४२॥
भेंटेउ लषन ललकि लघु भाई, बहुरि निषादु लीन उर लाई ।
पुनि मुनिगनदुहुँ भाइन्ह बन्दे, अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा, धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा ।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये, सिर कर कमल परसि बैठाये ॥
सीय असीस दीन्ह मन माहीं, मगन सनेह देहसुधि नाहीं ।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता, भे निसोच उर अपडर बीता ॥

कोउ कछु कहइ न कोउ किछु पूछा, प्रेम भरा मनु निज गति छूछा।
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि, जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥
दो०-नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब आये बिकल बियोग॥२४३॥
सीलसिंधु सुनि गुरु आगवनू, सिय समीप राखे रिपुदवनू।
चले सबेग राम तेहि काला, धीर-धरम धुर दीनदयाला॥
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे, दंडप्रनाम करन प्रभु लागे।
मुनिवर धाइ लिये उर लाई, प्रेम उमगि भेटे दोउ भाई॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू, कीन्ह दूर ते दंडप्रनामू।
रामसखा रिषि बरबस भेटा, जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
रघुपति-भगति सुमंगल-मूला, नभ सराहिं सुर बरिसहि फूला।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं, बड बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
दो०-जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक मिले मुदित मुनराउ।
सो सीता-पति-भजन को प्रगट प्रतापप्रभाउ॥२४४॥
आरत लोगु राम सब जाना, करुनाकर सुजान भगवाना।
जो जेहि भाय रहा अभिलाखी, तेहितेहि कै तसितसि रुख राखी॥
सानुज मिलि पल महु सबकाहू, कीन्ह दूरि दुखु-दारुन-दाहू।
यह बडि बात राम कै नाहीं, जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा, पुरजन सकल सराहहि भागा।
देखीं राम दुखित महतारीं, जनु सुबेलि अवली हिम मारीं॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई, सरल सुभाय भगति मति भेई।
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी, कालकरम बिधि सिर धरि खोरी॥
दो०-भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अब ईस आधीन जगु काहु न देइय दोषु॥२४५॥
गुरु-तिय-पद बन्दे दुहुँ भाई, सहित बिप्रतिय जे सँग आई।
गङ्ग-गौरि-सम सब सनमानी, देहिं असीस मुदित मृदुबानी॥

गहि पद लगे सुमित्राअंका, जनु भेंटी सपति अति रङ्का।
पुनि जननीचरननि दोउ भ्राता, परे प्रेम व्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाये, नयन सनेह सलिल अन्हवाये।
तेहि अवसर कर हरष विषादू, किमि कहइ मूक जिमि स्वादू॥
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ, गुरुसन कहेउ कि धरिय पाऊ।
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू, जल थल तकि तकि उतरे लोगू॥
दो०—महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रमु गवनु किय भरत लषन रघुनाथ॥२४६॥
सीय आइ मुनि वर पग लागी, उचित असीस लहि मन माँगी।
गुरुपतिनिहि मुनितियन्हसमेता, मिली प्रेमु कहि जाइ न जेता॥
वन्दि वन्दि पग सिय सबही के, आसिरवचन लहे प्रिय जी के।
सासु सकल जब सीय निहारी, मूँदे नैन सहमि सुकुमारी॥
परी वधिकवस मनहुँ मराली, काह कीन्ह करतार कुचाली।
तिन्हसियनिरखिनिपटदुखुपावा, सो सबसहिय जो दैव सहावा॥
परी वधिकवस मनहुँ मराली, काह कीन्ह करतार कुचाली।
तिन्हसियनिरखिनिपटदुखुपावा, सो सब सहिय जो दैव सहावा॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा, नील-नलिन-लोयन भरि नीरा।
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई, तेहि अवसर करुना महि छाई॥
दो० लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेमवस रहिहहु भरी सोहाग॥२४७॥
विकल सनेह सीय सब रानी, बैठन सबहि कहेउ गुरुग्यानी।
कहि जगगतिमायिक मुनिनाथा, कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृप कर सुर-पुर गवनु सुनावा, सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा।
मरनहेतु निज नेहु बिचारी, भे अति विकल धीर-धुर धारी॥
कुलिसकठोर सुनत कटुबानी, बिलपत लषन सीय सब रानी।
सोकविकलअति सकल समाजू, मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥

मुनिवर बहुरि राम समुझाये, सहित समाज सुरसरित न्हाये ।
व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा, मुनिहु कहे जलकाहू न लीन्हा ॥
दो० भोर भये रघुनंदनहिं जो मुनि आयसु दीन्ह ।
श्रद्धा-भगति-समेत प्रभु सो सबु सादर कीन्ह ॥ २४८ ॥
करि पितुक्रिया बेद जसि बरनी, भे पुनीत पातक-तम-तरनी ।
जासु नाम पावक अघतूला, सुमिरत-सु-मंगल-मूला ॥
सुद्ध सो भयउ साधु समत अस, तीरथ आवाहन सुरसरि जस ।
सुद्ध भये दुइ बासर बीते, बोले गुरु सन राम पिरीते ॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी, कंद-मूल-फल-अंबु-अहारी ।
सानुज भरत सचिव सब माता, देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
सब समेत पुर धारिय पाऊ, आपु इहाँ अमरावति राऊ ।
बहुत कहेउ सब कियउ ढिठाई, उचित होइ तस करिय गोसाई ॥
दो० धर्मसेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम ।
लोग दुखित दिन दुइ दरसु देखि लहहु बिस्राम ॥ २४९ ॥
रामबचन सुनि सभय समाजू, जनु जलनिधि महं बिकल जहाजू ।
सुनि गुरुगिरा सु-मंगल-मूला, भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
पावन पय तिहुँकाल नहाहीं, जो बिलोकि अघओघ नसाहीं ।
मंगलमूरति लोचन भरि भरि, निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥
राम-सैल-बन देखन जाहीं, जहं सुख सकल सकल दुख नाहीं ।
झरना झरहिं सुधासम बारी, त्रि-बिध ताप-हर त्रिबिध बयारी ॥
बिटप बेलि तृन अगनित जाती, फल प्रसून पल्लव बहु भाँति ।
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं, जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥
दो०-सरनि सरोरुह जल बिहंग कूजत गुंजत भृंग ।
बैरबिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥ २५० ॥
कोल किरात भिल्ल बनबासी, मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी ।
भरि भरि परनपुटी रचि रुरी, कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥

सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा, कहि कहि स्वादु भेद गुन नामा।
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं, फेरत रामदोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मृदुबानी, मानत साधु प्रेम पहिचानी।
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा, पावा दरसनु रामप्रसादा॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा, जस मरुधरनि देव-धुनि धारा।
राम कृपाल निषाद नेवाजा, परिजन प्रजन चहिय जस राजा॥
दो०—यह जिय जानि सकोच तजि करिय छोहु लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥२५१॥
तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे, सेवाजोगु न भाग हमारे।
देव कहा हम तुम्हहिं गोसाईं, ईंधनु पात किरात-मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई, लेहिं न बासन बसन चोराई।
हम जड जीव जीव-गन-घाती, कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं, नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं।
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ, यह रघु-नन्दन-दरस प्रभाऊ॥
जब ते प्रभु-पद-पदुम निहारे, मिटे दुसह-दुख-दोष हमारे।
बचन सुनत पुरजन अनुरागे, तिन्ह के भाग सराहन लागे॥
छं० लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम-चरन-सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नरनारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघु-बंस-मनि की लोह लै नौका तिरा॥
सो० बिहरहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम॥२५२॥
पुर-नर-नारि मगन अति प्रीती, बासर जाहिं पलकसम बीती।
सीय सासु प्रति बेष बनाई, सादर करइ सरिस सेवकाई॥
लखा न मरम राम बिन काहू, माया सब सियमाया माहू।
सीय सासु सेवा बस कीन्ही, तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही॥

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई, कुटिल रानि पछितानि अघाई।
अवनि जमहि जाँचति कैकेई, महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥
लोकहु बेद-बिदित कबि कहहीं, राम-बिमुख थलु नरक न लहहीं।
यह संसउ सब के मन माहीं, रामगवनु बिधि अवध कि नाहीं॥
दो०–निसि न नीद नहिं भूख दिन भरत बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहिं सलिल संकोच॥२५३॥
कीन्हि मातु मिस काल कुचाली, ईति भीति जस पाकत साली।
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू, मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी, मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी।
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ, राम जननि हठ करबि कि काऊ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता, तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता।
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू, हरगिरि तें गुरु सेवक-धरमू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी, सोचत भरतहिं रैनि बिहानी।
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई, बैठत पठये रिषय बोलाई॥
दो०–गुरु-पद-कमल प्रनाम करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥२५४॥
बोले मुनिबरु समय समाना, सुनहु सभासद भरत सुजाना।
धरमधुरीन भानु-कुल-भानू, राजा रामु स्वबस भगवानू॥
सत्यसंध पालक स्रुतिसेतू, रामजनमु जग मंगलहेतू।
गुरु-पितु-मातु-बचन-अनुसारी, खल-दल-दलन देव-हित कारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु, कोउ न राम सम जान जथारथु।
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला, माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई, जोग सिद्धि निगमागम गाई।
करि बिचार जियँ देखहु नीके, राम रजाइ सीस सबही के॥
दो०–राखे राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥२५५॥

सब कहँ सुखद रामअभिषेकू, मंगल-मोद मूल मग एकू।
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ, कहहु समुझि सोइ करिय उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनिबर-बानी, नय परमारथ-स्वारथ सानी।
उतर न आव लोग भये भोरे, तब सिरनाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भये भूप घनेरे, अधिक एक ते एक बड़ेरे।
जनम हेतु सब कहँ पितु माता, करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुखसजइ सकल कल्याना, अस असीस राउरि जग जाना।
सोइ गोसाइँ बिधिगति जेहि छेंकी, सकइ को टारि टेक जो टेकी॥
दो०—बूझिय मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेह-मय-बचन गुरु उर उमगा अनुरागु॥२५६॥
तात बात फुरि राम कृपाहीं, रामबिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।
सकुचउँ तात कहत एकबाता, अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई, फेरियहि लषन सीय रघुराई।
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता, भे प्रमोद परि-पूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा, जनु जिय राउ रामु भये राजा।
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी, सम दुखसुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरत मुनिकहासोकीन्हे, फलु जग जीवन्हअभिमत दीन्हे।
कानन करउँ जनम भरि बासू, एहि ते अधिक न मोर सुपासू॥
दो०—अंतरजामी रामसिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिय बचन प्रवान॥२५७॥
भरत बचन सुनि देखि सनेहू, सभासहित मुनि भयउ बिदेहू।
भरत-महा-महिमा जलरासी, मुनिमति ठाढि तीर अबला सी॥
गा चह पार जतनु हिय हेरा, पावति नाव न बोहित बेरा।
अउर करहि को भरत बडाई, सर सीपी की सिंधु समाई॥
भरतु मुनहिं मनभीतर भाये, सहितसमाज राम पहिं आये।
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसनु, बैठेसबसुनि मुनि अनुसासनु॥

बोले मुनिवर बचन बिचारी, देस काल अवसर अनुहारी।
सुनहु राम सरबग्य सुजाना, धरम नीति-गुन-ग्यान-निधाना॥
दो०—सब के उरअंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी भरत-हित होइ सो कहिय उपाउ॥२५८॥
आरत कहहिं बिचारि न काऊ, सूझ जुआरिहि आपुन दाऊ।
सुनि मुनिबचन कहत रघुराऊ, नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउरि राखे, आयसु किये मुदित फुर भाखे।
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई, माथे मानि करउँ सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं, सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा, भरत-सनेह बिचारु न राखा॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी, भरत-भगति-बस भइ मति मोरी।
मोरे जान भरतरुचि राखी, जो कीजिय सो सुभ सिव साखी॥
दो०—भरतबिनय सादर सुनिय करिय बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥२५९॥
गुरुअनुरागु भरत पर देखी, रामहृदय आनंदु बिसेखी।
भरतहिं धरम-धुर-धर जानी, निज सेवक तन-मानस बानी॥
बोले गुरु आयसु-अनकूला, बचन मंजु मृदु मंगलमूला।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई, भयउ न भुवन भरतसम भाई॥
जे गुर-पद-अंबुज अनुरागी, ते लोकहुँ बेदहुँ बडभागी।
राउर जा पर अस अनुरागू, को कहि सकइ भरत कर भागू॥
लखि लघुबंधु बुद्धि सकुचाई, करत बदन पर भरत बडाई।
भरतु कहहिं सोइ किये भलाई, अस कहि रामु रहे अरगाई॥
दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन कहहु हृदय कइ बात॥२६०॥
सुनि मुनिबचन रामरुख पाई, गुरु साहिब अनुकूल अघाई।
लखि अपने सिर सबु छरुभारू, कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥

पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े, नीरजनयन नेहजलु बाढ़े ॥
कहव मोर मुनिनाथ निवाहा, एहि ते अधिक कहउँ मैं काहा ।
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ, अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेहु विसेखी, खेलत खुनिस न कवहूँ देखी ।
शिशुपन ते परिहरेउँ न संगू, कवहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही, हारेहु खेल जितावहिं मोही ।
दो०-महूँ सनेह-सकोच-वस सनमुख कहे न वैन ॥
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नैन ॥२६१॥
विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा, नीच बीचु जननी मिस पारा ।
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा, अपनी समुझि साधु सुचि को भा ॥
मातु मंद मैं साधु सुचाली, उर अस आनत कोटि कुचाली ।
फरइ कि कोदव वालि सुसाली, मुकता प्रसव कि संवुक काली ॥
सपनेहु दोसु कलेसु न काहू, मोर अभाग उदधि अवगाहू ।
विनु समुझे निज अघ-परिपाकू, जारेउँ जाय जननि कहि काकू ॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा, एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ।
गुरु गोसाइँ साहिब सियरामू, लागत मोहि नीक परिनामू ॥
दो० साधु-सभा-गुरु-प्रभु-निकट कहउँ सुथल सतिभाउ ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६२॥
भूपति मरनु प्रेमपनु राखी, जननी कुमति जगतु सब साखी ।
देखि न जाहिं विकल महतारी, जरहिं दुसह जर पुर-नर-नारी ॥
मोह सकल अनरथ कर मूला, सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला ।
सुनि वनगवनु कीन्ह रघुनाथा, करि मुनिवेष लखनु-सिय-साथा ॥
विनु पानहिन्ह पयादेहि पाये, शंकर साखि रहेउँ एहि घाये ।
बहुरि निहारि निषाद सनेहू, कुलिस कठिन उर भयउ न वेहू ॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई, जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ।
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि वीछी, तजहिं विषम विषु तामस तीछी ॥

दो०–तेइ रघुनंदन लषन सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावहि काहि ॥२६३॥
सुनि अति बिकल भरत-बर-बानी, आरति-प्रीति-बिनय-नय सानी।
सोकमगन सब सभा खभारू, मनहुँ कमलबन परेउ तुसारू ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी, भरतप्रबोध कीन्ह मुनि ग्यानी।
बोले उचित बचन रघुनंदू, दिनकर-कुल-कैरव-बन चंदू ॥
तात जाय जिन करहु गलानी, ईस अधीन जीवगति जानी।
तीनि काल तिभुवन मत मोरे, पुन्यसिलोक तात तर तोरे ॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई, जाइ लोकु-परलोकु नसाई ॥
दोस देहिं जननिहि जड तेई, जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।
दो०–मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुख सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६४॥
कहउँ सुभाउ सत्यसिव साखी, भरत भूमि रह राउरि राखी।
तात कुतरक करहु जनि जाये, बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराये ॥
मुनिगन निकट बिहँगमृगजाहीं, बालक बधिक बिलोकि पराहीं।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना, मानुष तनुगुन-ग्यान-निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके, करउँ काह असमंजसु जी के।
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी, तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू, तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू।
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा, अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥
दो० मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।
सत्य-संध रघुबर-बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥२६५॥
सुर-गन-सहित सभय सुरराजू, सोचहिं चाहत होन अकाजू।
बनत उपाउ करत कछु नाहीं, रामसरन सब गे मन माहीं ॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं, रघुपतिभगत-भगति-बस अहहीं।
सुधि करि अंबरीष दुरबासा, भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥

सहे सुरन्ह बहुकाल विषादा, नरहरि किये प्रगट प्रहलादा।
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा, अब सुरकाज भरत के हाथा॥
आन उपाउ न देखिय देवा, मानत राम सु-सेवक-सेवा।
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं, निजगुन-शील राम बस करतहिं॥
दो० सुनि सुरमत सुरगुरु कहेउ भल तुम्हार बड़भागु।
सकल सु-मंगल-मूल जग भरत-चरन-अनुरागु॥२६६॥
सीतापति सेवक-सेवकाई, काम-धेनु-सय सरिस सुहाई।
भरत भगति तुम्हरे मन आई, तजहु सोचु विधि बात बनाई॥
देखु देवपति भरत प्रभाऊ, सहज-सुभाय विबस रघुराऊ।
मन थिर करहु देव डरु नाहीं, भरतहिं जानि रामपरिछाहीं॥
सुनि सुरगुरु-सुर-संमत सोचू, अन्तरजामी प्रभुहि सकोचू।
निज सिर भारु भरत जिय जाना, करत कोटि विधि उर अनुमाना॥
करि विचारु मन दीन्ही टीका, रामरजायसु आपन नीका।
निज पन तजि राखेउ पन मोरा, छोहु सनेहु कीन्ह नहि थोरा॥
दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब विधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज-जुग-हाथ॥२६७॥
कहउं कहाउं का अब स्वामी, कृपा-अंबुनिधि अंतरजामी।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला, मिटी मलिन मन कलपित सूला॥
अपडर डरेउ न सोच समूले, रविहि न दोष देव दिसि भूले।
मोर अभागु मातकुटिलाई, विधिगति विषम कालकठिनाई॥
पाउं रोपि सब मिलि मोहि घाला, प्रनतपाल पन आपन पाला।
यह नइ रीति न राउरि होई, लोकहु वेद विदित नहिं गोई॥
जगु अनभल भल एकु गोसाईं, कहिय होइ भल कासु भलाई।
देव देव-तरु-सरिस सुभाऊ, सनमुख विमुख न काहुहि काऊ॥
दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जगु राउ रंकु भल पोच॥२६८॥

लखि सब बिधिगुरु-स्वामि-सनेहू, मिटेउ छोभु नहिं मन सदेहू।
अब करुनाकर कीजिय सोई, जनहितप्रभुचितछोभ न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची, निज हित चहइ तासु मति पोची।
सेवकहित साहिबसेवकाई, करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥
स्वारथु नाथ फिरे सबही का, किये रजाइ कोटि बिधि नीका।
यह स्वारथ-परमारथ-सारू, सकल सुकृत फलसुगति सिंगारू॥
देव एक बिनती सुनि मोरी, उचित होइ तस करब बहोरी।
तिलकसमाजु साजि सबु आना, करिय सुफल प्रभु जौ मनु माना॥
दो०-सानुज पठइय मोहि बन कीजिय सबहि सनाथ।
न तरु फेरयहि बँधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥२६९॥
न तरु जाहिंबन तीनिउँ भाई, बहुरिय सीयसहित रघुराई।
जेहि बिधिप्रभुप्रसन्न मन होई, करुनासागर कीजिय सोई॥
देव दीन्ह सबु मोहि अभारू, मोरे नीति न धरम बिचारू।
कहउँ बचन सब स्वारथहेतू, रहत न आरत के चित चेतू॥
उतर देइ सुनि स्वामिरजाई, सो सेवक लखि लाज लजाई।
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू, स्वामि सनेह सराहत साधू॥
अब कृपालमोहि सो मत भावा, सकुचस्वामिमन जाइ न पावा।
प्रभु-पद-सपथ कहउँ सतिभाऊ, जग-मंगल-हित एक उपाऊ॥
दो० प्रभु प्रसन्नमन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥२७०॥
भरतबचन सुचि सुनि सुर हरषे, साधु सराहि सुमन सुर बरषे।
असमंजसबस अवधनिवासी, प्रमुदित मन तापस-बन-बासी॥
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची, प्रभुगति देखि सभा सब सोची।
जनकदूत तेहि अवसर आये, मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाये॥
करि प्रनामु तिन्ह राम निहारे, बेषु देखि भये निपट दुखारे।
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता, कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥

मुनि सकुचाइ नाइ महि माथा, बोले चरबर जोरे हाथा।
बूझब राउर सादर साईं, कुसलहेतु सो भयउ गोसाईं॥

दो० नाहिं त कोसलनाथ के साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ॥२७१॥

कोसलपति-गति सुनि जनकौरा, भे सब लोक सोकबस बौरा।
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू, नामु सत्य अस लाग न केहू॥
रानि-कु-चालि सुनत नरपालहि, सूझ न कछु जसमनि बिनु ब्यालहि
भरतराजु रघु-बर-बन-बासू, भा मिथिलेसहि हृदय हरासू॥
नृप बूझे बुधि-सचिव-समाजू, कहहु बिचारि उचित का आजू।
समुझि अवध असमंजस दोऊ, चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ॥
नृपहि धीर धरि हृदय बिचारी, पठये अवध चतुर चर चारी।
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ, आयहु बेगि न होइ लखाऊ॥

दो०—गये अवध चर भरतगति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूट हि भरतु चार चले तिरहूति॥२७२॥

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी, जनकसमाज जथामति बरनी।
सुनि गुरु पुरजन सचिवमहीपति, भे सब सोच सनेहबिकलअति॥
धरि धीरज करि भरत बड़ाई, लिये सुभट साहनी बोलाई।
घर पुर देस राखि रखवारे, हय गय रथ बहु जान सँवारे॥
दुघरी साधि चले ततकाला, किय बिस्राम न मग महिपाला।
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा, चले जमुन उतरन सबु लागा॥
खबरि लेन हम पठये नाथा, तिन्ह कहि असि महि नायउ माथा।
साथ किरात छसातक दीन्हे, मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे॥

दो० सुनत जनकआगवनु सबु हरषेउ अवधसमाजु।
रघुनंदनहिं सकोच बड़ सोचबिबस सुरराजु॥२७३॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेई, काहि कहइ केहि दूषनु देई।
अस मन आनि मुदित नरनारी, भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥

एहि प्रकार गत बासर सोऊ, प्रात नहान लाग सबु कोऊ।
करि मज्जनु पूजहिं नरनारी, गनपति गौरि पुरारि तमारी॥
रमा-रमन-पद बंदि बहोरी, बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी।
राजा रामु जानकी रानी, आनँदअवधि अवधरजधानी॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा, भरतहिं रामु करहु जुबराजा।
एहि सुखसुधा सींचि सब काहू, देव देहु जग-जीवन-लाहू॥
दो०--गुरुसमाज भाइन्ह सहित रामराजु पुर होउ।
अछत रामराजा अवध मरिय माँग सब कोउ॥ २७४॥
सुनि सनेहमय पुर-जन-बानी, निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी।
एहिबिधि नित्यकरमकरि पुरजन, रामहिकरहिं प्रनाम पुलकितन॥
ऊँच नीच मध्यम नर नारी, लहहिं दरसु निज निज अनुहारी।
सावधान सबही सनमानहिं, सकल सराहत कृपानिधानहिं॥
लरिकाइहि तें रघु-बर-बानी, पालत नीति प्रीति पहिचानी।
सील सँकोच-सिंधु रघुराऊ, सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥
कहत राम-गुन गन अनुरागे, सब निज भाग सराहन लागे।
हम सम पुन्यपुंज जग थोरे, जिन्हहिं राम जानत करि मोरे॥
दो०--प्रेममगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा सम्भ्रम उठेउ रबि-कुल-कमल-दिनेसु॥२७५॥
भाइ-सचिव-गुरु पुरजन-साथा, आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा।
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं, करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं॥
राम-दरस - लालसा - उछाहू, पथस्रम लेसु कलेसु न काहू।
मन तह जह रघु-बर-बैदेही, बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥
आवत जनक चले यहि भाँती, सहित समाज प्रेम मति माँती।
आये निकट देखि अनुरागे, सादर मिलन परसपर लागे॥
लगे जनक-मुनि-जन-पद बंदन, रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन।
भाइन्हसहितरामु मिलि राजहिं, चले लेवाइ समेत समाजहिं॥

दो०—आस्रम सागर साँतरस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुनासरित लिये जाहिं रघुनाथु ॥२७६॥

बोरति ग्यान विराग करारे, वचन ससोक मिलत नद नारे।
सोच उसास समीरतरंगा, धीरज तट-तरु-वर कर भंगा॥
विषम विपाद तोरावति धारा, भय भ्रम भवँर अवर्त अपारा।
केवट बुधि विद्या वडि नावा, सकहिं न खेइ एक नहिं आवा।
वनचर कोल किरात वेचारे, थके विलोकि पथिक हिय हारे।
आस्रम उदधि मिली जब जाई, मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
सोक-विकल दोउ राज समाजा, रहा न ज्ञान धीरजु लाजा।
भूप-रूप-गुन-सील सराहा, रोवहिं सोकसिंधु अवगाही॥

छंद अवगाहि सोकसमुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।
देइ दोष सकल सरोष बोलहिं वाम विधि कीन्ही कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा विदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की॥

सो० किये अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिवरन्ह।
धीरजु धरिय नरेस कहेउ वसिष्ठ विदेह सन॥२७७॥

जासु ग्यानरवि भवनिसि नासा, वचनकिरन मुनि कमल-विकासा।
तेहि कि मोह ममता नियराई, यह सिय-राम-सनेह वड़ाई॥
विषयी साधक सिद्ध सयाने, त्रिविध जीव जग वेद वखाने।
राम-सनेह-सरस मन जासू, साधु सभा वड आदर तासू॥
सोह न रामप्रेम विनु ग्यानू, करनधार विनु जिमि जलजानू।
मुनि वहुविधि विदेहु समुझाये, रामघाट सव लोग नहाये॥
सकल सोक-संकुल नरनारी, सो वासर वीतेउ विनु वारी।
पसुखग मृगन्ह न कीन्ह अहारू, प्रिय परिजनकर कवन विचारू॥

दो०—दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
वैठे सव वट-विटप-तर मन मलीन कृसगात॥२७८॥

जे महिसुर दसरथ पुर-वासी, जे मिथिला-पति-नगर-निवासी।
हंस-बंस-गुरु जनकपुरोधा, जिन्ह जग मगु परमारथ सोधा॥
लगे कहन उपदेस अनेका, सहित धरम नय बिरति बिबेका।
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी, समुझाई सब सभा सुबानी॥
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ, नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ।
मुनि कह उचित कहत रघुराई, गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥
रिषि-रुख लखि कह तिरहुतिराजू, इहाँ उचित नहिं असन अनाजू।
कहा भूप भल सबहि सोहाना, पाइ रजायसु चले नहाना॥
दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लेइ आये बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार॥२७६॥
कामद भे गिरि रामप्रसादा, अवलोकत अपहरत बिषादा।
सर सरिता बन भूमि बिभागा, जनु उमगत आनद अनुरागा॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला, बोलत खग मृग अलि अनुकूला।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू, त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥
जाइ न बरनि मनोहरताई, जनु महि करति जनक-पहुनाई।
तब सब लोग नहाइ नहाई, राम जनक मुनि आयसु पाई॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे, जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे।
दल फल मूल कंद बिधि नाना, पावन सुन्दर सुधासमाना॥
दो० सादर सब कह रामगुरु पठये भरि भरि भार॥
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु लगे करन फलहार॥२८०॥
एहि बिधि बासर बीते चारी, रामु निरखि नर नारि सुखारी।
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं, बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥
सीताराम संग बनबासू, कोटि अमर-पुर-सरिस सुपासू।
परिहरि लषन-रामु-बैदेही, जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥
दाहिन दैव होइ जब सब ही, राम समीप बसिय बन तबहीं।
मंदाकिनि मज्जन तिहुँ काला, रामदरसु मुद-मङ्गल-माला॥

अटनु राम-गिरि वनतापसथल, असनु अमियसम कन्द मूलफल
सुखसमेत संवत दुइ साता, पलसम होहिं न जनियहिं जाता ॥
दो० एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु ।
सहज सुभाय समाज दुहुँ राम-चरन-अनुरागु ॥ २८१॥
एहि विधि सकल मनोरथ करहीं, वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ।
सीयमातु तेहि समय पठाई, दासी देखि सुअवसरु आई ॥
सावकास सुनि सब सिय सासू, आयउ जनक-राज रनिवासू ।
कौसल्या सादर सनमानी, आसन दिये समयसम आनी ॥
सीलु सनेहु सकल दुहुँ ओरा, द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ।
पुलकसिथिलतनु वारिविलोचन, महिनख लिखत लगीसबसोचन ॥
सब सिय-राम-प्रीतिकिसिमूरत, जनु करुना बहुवेष विसूरति ।
सीयमातु कह विधिबुधि बाकी, जो पयफेनु फोर पबिटाँकी ॥
दो० सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥ २८२॥
सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा, बिधिगति बडि बिपरीत बिचित्रा ।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी, बाल-केलि-सम बिधिमति भोरी ॥
कौसल्या कह दोस न काहू, करमविवस दुख सुख छति लाहू ।
कठिन करमगति जान विधाता, जो सुभ असुभ सकल फलदाता ।
ईस रजाइ सीस सबही के, उतपति थितिलयविषहु अमी के ।
देवि मोहबस सोचिय वादी, विधिप्रपंचु असअचल अनादी ॥
भूपति जियब मरब उर आनी, सोचिय सखि लखि निजहित-हानी
सीयमातु कह सत्य सबानी, सुकृती अवधि अवध-पति-रानी ॥
दो०-लषनु रामु सिय जाहु बन भल परिनाम न पोचु ।
गहबरि हिय कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु ॥ २८३॥
ईसप्रसाद असीस तुम्हारी, सुत सुतवधू देवसरि - वारी ।
रामसपथ मैं कीन्ह न काऊ, सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ ॥

भरत सील गुन विनय बड़ाई, भायप भगति भरोस भलाई।
कहत सारदहु कर मति हीचे, सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा, बार बार मोहि कहेउ महीपा।
कसे कनकु मनि पारिखि पाये, पुरुष परिखियहिं समय सुभाये॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा, सोक सनेह सयानप थोरा।
सुनि सुर-सरि-सम पावनि बानी, भईं सनेह बिकल सब रानी॥
दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देवि मिथिलेसि।
को बिबेक-निधि-बल्लभहि तुम्हहिं सकइ उपदेसि॥२८४॥
रानि राय सन अवसरु पाई, अपनी भाँति कहब समुझाई।
रखियहिं लषन भरत गवनहिं बन, जौं यह मत मानइ महीपमन॥
तौ भल जतनु करब सुबिचारी, मोरें सोचु भरत कर भारी।
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं, रहे नीक मोहि लागत नाहीं॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी, सब भइँ मगन करुनरस रानी।
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि, सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥
सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ, तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ।
देवि दंड जुग जामिनि बीती, राममातु सुनि उठी सप्रीती॥
दो० बेगि पाउ धारिय थलहिं कह सनेह सतिभाय।
हमरे तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥ २८५॥
लखि सनेह सुनि बचन बिनीता, जनकप्रिया गहि पाय पुनीता।
देवि उचित अस बिनय तुम्हारी, दसरथ-घरनि राम-महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं, अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं।
सेवकु राउ करम-मन बानी, सदा सहाय महेस भवानी॥
रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहे।
रामु जाइ बन करि सुरकाजू, अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम-बाहु-बल, सुख बसिहहिं अपने अपने थल।
यह सब जागबलिक कहि राखा, देवि न होइ मुधा मुनि भाखा॥

दो० अस कहि पग परि प्रेम अति सियहित विनय सुनाइ।
सियसमेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥ २८६॥
प्रिय परिजनहिं मिली वैदेही, जो जेहि जोगु भांति तेहि तेही।
तापसवेष जानकी देखी, भा सबु विकल बिषाद बिसेखी॥
जनक रामगुरु आयसु पाई, चले थलहिं सिय देखी आई।
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी, पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू, भयउ भूपमनु मनहु प्रयागू।
सियसनेह बटु बाढ़त जोहा, तापर राम-प्रेम-सिसु सोहा॥
चिरजीवी मुनि ग्यानु बिकल जनु, बूडत लहेउ बालअवलंबनु।
मोह-मगन मति नहिं बिदेह की, महिमा सिय-रघु-वर-सनेह की॥
दो०-सिय पितु-मातु-सनेह-वस बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥२८७॥
तापसबेष जनक सिय देखी, भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी।
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ, सुजस धवलजगुकह सब कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी, गवनु कीन्ह बिधिअन्ड करोरी।
गंग अवनिथल तीनि बडेरे, एहि किय साधुसमाज घनेरे॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी, सीय सकुचि महि मनहुँ समानी।
पुनि पितु मातु लीन्ही उर लाई, सिख आसिषहितदीन्ही सुहाई॥
कहति न सीय सकुचि मनमाहीं, इहाँ वसब रजनी भलु नाहीं।
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ, हृदय सराहत सीलु सुभाऊ॥
दो०-बारबार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरतगति रानि सुबानि सयानि॥२८८॥
सुनिभूपाल भरत व्यवहारू, सोन सुगंध सुधा ससिसारू।
मूँदे सजल नयन पुलके तन, सुजससराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुनु सुमुखिसुलोचनि, भरत कथा भव-बंध-बिमोचनि।
धरम रजनय ब्रह्मविचारू, इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥

सो मतिमोरि भरत महिमाहीं, कहइ काह छलिछुअति न छाहीं।
बिधिगनपतिअहिपतिसिवसारद, कबि कोबिदा बुद्धिबिसारद ॥
भरत चरित कीरति करतूती, धरम सील गुन बिमल बिभूती।
समुझत सुनत सुखद सब काहू, सुचिसुरसरि रुचि निदरसुधाहू ॥
दो०–निरबधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरतसम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेरसम कबि-कुल-मति सकुचानि ॥२८६॥
अगमसबहिं बरनत बरबरनी, जिमि जलहीन मीन गमु धरनी।
भरत अमित महिमासुनुरानी, जानहिरामु न सकहिं बखानी ॥
बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ, तियजिय कीरुचिलखि कह राऊ।
बहुरहिं लषनु भरत बन जाहीं, सब कर भल सब के मन माहीं ॥
देबि परन्तु भरत रघुबर की, प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।
भरतु अवधि सनेह ममताकी, जद्यपि रामु सींव समता की ॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे, भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे।
साधन-सिद्धि रामपग नेहू, मोहि लखि परत भरतमत एहू ॥
दो०- भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ रामरजाइ।
करिय न सोचु सनेहबस कहेउ भूप बिलखाइ ॥२६०॥
राम-भरत-गुन गनत सप्रीती, निसि दपतिहिं पलकसम बीती।
राजसमाज प्रात जुग जागे, न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई, बदि चरन बोले रुख पाई।
नाथ भरतु पुरजन महतारी, सोकबिकल बनबास दुखारी ॥
समितसमाज राउ मिथिलेसू, बहुत दिवस भये सहत कलेसू।
उचित होइसोइ कीजिय नाथा, हित सबही कर रउरे हाथा ॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ, मुनि पुलके लखि सील सुभाउ।
तुम्ह बिनुराम सकलसुखसाजा, नरकसरिस दुहुँ राजसमाजा ॥
दो०–प्रान प्रान के जीब के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तातसुहातगृह जिन्हहिंतिन्हहिंबिधिबाम ॥२६१॥

सो सुखु धरमु करमु जरि जाऊ, जहँ न राम-पदपंकज भाऊ।
जोग कुजोग ग्यान अग्यानू, जहँ नहिं रामप्रेम परधानू॥
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही, तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही।
राउर आयसु सिर सबही के, बिदित कृपालहि गति सब नीके॥
आपु आस्रमहिं धारिय पाऊ, भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ।
करि प्रनामु तब रामु सिधाये, रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
रामबचन गुरु नृपहिं सुनाये, सील सनेह सुभाय सुहाये।
महाराज अब कीजिय सोई, सब कर धरमसहित हित होई॥
दो०—ग्यान निधान सुजान सुचि धरमधीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥२६२॥
सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे, लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे।
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं, आये इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥
रामहि राय कहेउ बन जाना, कीन्ह आपु प्रिय प्रेमप्रवाना।
हम अब बन ते बनहिं पठाई, प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी, भये प्रेमबस बिकल बिसेखी।
समउ समुझि धरि धीरजु राजा, चले भरत पहिं सहित समाजा॥
भरत आइ आगे भइ लीन्हे, अवसर सरिस सुआसन दीन्हे।
तात भरत कह तिरहुतिराऊ, तुम्हहिं बिदित रघुबीरसुभाऊ॥
दो०—राम सत्यब्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सँकोचबस कहिय जो आयसु देहु॥२६३॥
सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी, बोले भरतु धीर धरि भारी।
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू, कुल-गुरु-सम हित माय न बापू॥
कौसिकादि मुनि सचिवसमाजू, ग्यान-अंबु-निधि आपुनु आजू।
सिसु सेवक आयसु अनुगामी, जानि मोहि सिख देइय स्वामी॥
एहि समाज थल बूझब राउर, मौन मलिन मैं बोलब बाउर।
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता, छमब तात लखि बाम बिधाता॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना, सेवाधरम कठिन जगु जाना।
स्वामि-धरम स्वारथहिं विरोधी, बैरअंध प्रमहिं न प्रबोधू॥
दो०–राखि राम रुख धरमु व्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब के समत सर्बहित करिअ प्रेमु पहिचानि॥२६४॥
भरतवचन सुनि देखि सुभाऊ, सहित समाज सराहत राऊ।
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे, अरथु अमितअति आखरथोरे॥
ज्यों मुख मुकुरु मुकुरु निज पानी, गहि न जाइअसअद्भुत बानी।
भूप भरतु मुनि साधु समाजू, गे जहँ बिबुध कुमुद-द्विज-राजू॥
सुनि सुधि सोच विकलसबलोगा, मनहु मीनगन नवजल जोगा।
देव प्रथम कुल-गुरु गति देखी, निरखि बिदेह सनेह बिसेखी॥
राम-भगति-मय भरत निहारे, सुर स्वारथी हहरि हिय हारे।
सब कोउ राम प्रेममय पेखा, भये अलेख सोचबस लेखा॥
दो०–राम सनेह-सकोच-बस कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाज॥२६५॥
सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही, देवि देव सरनागत पाही।
फेरिभरतमति करि निज माया, पालु बिबुधकुल करि छलछाया॥
बिबुधबिनय सुनि देवि सयानी, बोली सुर स्वारथ जड़जानी।
मो सन कहहु भरत-मति फेरू, लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
बिधि-हरि-हर माया बड़ि भारी, सोउ न भरतमति सकइनिहारी।
सो मति मोहि कहत करु भोरी, चाँदिनि कर कि चन्द करचोरी।
भरतहृदय सिय-रामु-निवासू, तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू॥
अस कहिसारदगइबिधिलोका, बिबुध बिकल निसिमानहुँ कोका।
दो०–सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥२६६॥
करि कुचालि सोचत सुरराजू, भरतहाथ सबु काजु अकाजू।
गये जनक रघुनाथसमीपा, सनमाने सब रबि-कुल-दीपा॥

समय समाज धरम अबिरोधा, बोले तब रघु-बंस-पुरोधा ।
जनक भरत संबादु सुनाई, भरत कहाउति कही सुहाई ॥
तात राम जस आयसु देहू, सो सब करइ मोर मत एहू ।
सुनि रघुनाथु जोरि जुगपानी, बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥
बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू, मोर कहब सब भाँति भदेसू ।
राउर राय रजायसु होई, राउरि सपथ सही सिर सोई ॥

दो०—रामसपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभासमेत ।
सकल बिलोकत भरतमुखु बनइ न ऊतरु देत ॥२९७॥

सभा सकुचबस भरत निहारी, रामबंधु धरि धीरज भारी ।
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा, बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा ॥
सोक कनकलोचन मति छोनी, हरी बिमल-गुन-गन जग जोनी ।
भरतबिबेक बराह बिसाला, अनायास उधरी तेहि काला ॥
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे, रामु राउ गुरु साधु निहोरे ।
छमब आजु अति अनुचित मोरा, कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥
हिय सुमिरी सारदा सुहाई, मानस तें मुखपंकज आई ।
बिमल बिबेक धरम नय साली, भरत भारती मंजु मराली ॥

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेह समाजु ।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९८॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी, पूज्य परमहित अंतरजामी ॥
सरल सुसाहिबु सीलनिधानू, प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू ।
समरथु सरनागत हितकारी, गुनगाहकु अव-गुन-अघ-हारी ॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं, मोहि समान मैं साइँ दोहाई ।
प्रभु पितु बचन मोहबस पेली, आयेउँ इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीच, अमिय अमरपद माहुर मीच ।
रामरजाइ मेट मन माहीं, देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई, प्रभु मानी सनेह सेवकाई ।

दो०—कृपा भलाई अपनी नाथ कीन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषनसरिस सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९९॥
राउररीति सुबानि बडाई, जगत विदित निगमागम गाई ।
क्रूरकुटिलखल कुमति कलंकी, नीच निसील निरीस निसंकी
तेउ सुनि सरन सामुहे आये, सुकृत प्रनाम किये अपनाये ।
देखि दोष कबहुँ न उर आने, सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी, आपु समान साज सब साजी ।
निज करतूति न समुझिय सपने सेवक सकुच सोच उर अपने ॥
सो गोसाईं नहिं दूसर कोपी, भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ।
पसु नाचत सुक पाठ प्रवाना, गुनगति नट पाठक अधीना ॥
दो०—यों सुधारि सनमानि जन किये साधु सिरमोर ।
को कृपाल बिनु पालिहइ बिरदावलि बरजोर ॥३००॥
सोक सनेह कि बाल सुभाये, आयउँ लाइ रजायसु बाये ।
तबहुँ कृपालु हेरिनिज ओरा, सबहि भांति भल मानेउ मोरा ॥
देखेउँ पाय सु-मंगल-मूला, जानेउ स्वामि सहज अनुकूला ।
बडे समाज बिलोकेउँ भागू, बडी चूक साहिब अनुरागू ॥
कृपा अनुग्रह अंगु अघाई, कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ।
राखा मोर दुलार गोसाईं, अपने सील सुभाय भुलाईं ॥
नाथ निपट मैंकीन्हि ढिठाई, स्वामि समाज संकोचु बिहाई ।
अविनय विनय जथारुचि बानी, छमहिं देव अतिआरतिजानी ॥
दो० सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बडि खोरि ।
आयसु देइय देव अब सबइ सुधारिय मोरि ॥३०१॥
प्रभु-पद-पदुम-पराग दोहाई, सत्य सुकृत सुख सीवं सुहाई ।
सो करिकहउँ हिये अपने की, रुचिजागत सोवत सपने की ॥
सहज सनेह स्वामिसेवकाई, स्वारथ छल फल चारि बिहाई ।
आग्यासम न सुसाहिबसेवा, सो प्रसादु जनु पावइ देवा ॥

असं कहि प्रेमबिबस भये भारी, पुलक सरीर बिलोचन बारी।
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई, समउ सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी, बैठाये समीप गहि पानी।
भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ, सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥
छं०-रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाजु मुनि मिथिलाधनी।
मनमहं सराहत भरत-भायप-भगति की महिमा घनी॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस-मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥
सो० देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नरनारि सब।
मघवा महामलीन मुये मारि मंगल चहत॥२०२॥
कपट-कुचालि-सींवं सुरराजू, पर-अकाज-प्रिय आपन काजू।
काकसमान पाक-रिपु-रीती, छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥
प्रथम कुमत करि कपटु सकेला, सो उचाट सब के सिर मेला।
सुरमाया सब लोग बिमोहे, रामप्रेम अतिसय न बिछोहे॥
भये उचाटवस मन थिर नाहीं, छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं।
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी, सरित सिंधु संगम जनु बारी॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं, एक एक सन मरमु न कहहीं।
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू, सरिस स्वान मघवान जुबानू॥
दो०-भरतु जनक मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं जथाजोग जन पाइ॥२०३॥
कृपासिंधु लखि लोग दुखारे, निज सनेह सुर-पति-छल भारे।
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री, भरतभगति सब कै मति जंत्री॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से, सकुचत बचन सिखे से।
भरत-प्रीति-नति- बिनय-बडाई, सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू, प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू।
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी, भगति सुभाय सुमित हिय हुलसी॥

आपु छोटि महिमा बडि जानी, कबिकुल कानि मानि सकुचानी ।
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई, मतिगति बालबचन की नाई ॥
दो०भरत बिमल-जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि ।
उदित बिमल जनहृदय नभ एकटक रही निहारि ॥३०४॥
भरतसुभाउ न सुगम निगमहूँ, लघु मति चापलता कबि छमहूं ।
कहतसुनत सतिभाउ भरत को, सीय-राम पद होइ न रत को ॥
सुमिरत भरतहि प्रेम राम को, जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को ।
देखि दयाल दसा सबही की, राम सुजान जानि जन जी की ॥
धरमधुरीन धीर नयनागर, सत्य सनेह सील सुख सागर ।
देस कालु लखि समउसमाजू नीति-प्रीति-पालक रघुराजू ॥
बोले वचन बानि सरबस से, हित परिनाम सनत ससिरस से ।
तात भरत तुम्ह धरमधुरीना, लोक-बेद-बिद प्रेम प्रबीना ॥
दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुरुसमाज लघु-बंधु-गुन कुसमय किमि कहि जात ॥३०५॥
जानहु तात तरनि-कुल-रीती, सत्यसंघ पितु कीरति प्रीती ।
समउसमाजु लाजगुरुजन की, उदासीन हित अनहित मन की ॥
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू आपन मोर परमहित धरमू ।
मोहि सब भाँति भरोसतुम्हारा, तदपि कहउं अवसर अनुसारा ॥
तात बात बिनु बात हमारी, केवल गुरुकुल कृपा सभारी ।
नतरु प्रजा पुरजन परिवारू, हमहिं सहित सबुहोत खुआरू ॥
जौ बिनु अवसर अथव दिनेसू, जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपात बिधि कीन्हा, मुनि मिथिलेस राखिसबु लीन्हा ।
दो०—राजकाज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम ॥
गुरुप्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥३०६॥
सहित समाज तुम्हार हमारा, घर बन गुरुप्रसाद रखवारा ।
मातु-पिता-गुरु-स्वामि-निदेसू, सकलधरम धरनीधरु सेसू ॥

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू, तात तरनि-कुल-पालक होहू ॥
साधक एक सकलसिधि देनी, कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।
सो बिचारि सहि संकटु भारी, करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥
बाँटी बिपति सबहिंमोहि भाई, तुम्हहि अवधिभरि बडिकठिनाई ।
जानि तुम्हहिं मृदुकहहुँकठोरा, कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठाँय सुबंधु सहाये, ओडिअहि हाथ असनि के घाये ।
दो०-सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिब होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ॥३०७॥
सभा सकल सुनि रघुबर-बानी, प्रेम-पयोधि अमिय जनु सानी ।
सिथिलसमाजु सनेह समाधी, देखि दसा चुप सारद साधी ॥
भरतहिं भयउ परम सतोषू सनमुख स्वामिबिमुख दुखदोषू ।
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू भा जनुगूँगेहि गिराप्रसादू ॥
कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी, बोले पानिपंकरुह जोरी ।
नाथ भयउ सुख साथ गये को, लहेउ लाहु जगजनमु भये को ॥
अब कृपाल जस आयसु होई, करउँ सीस धरि सादर सोई ।
सो अवलंब देव मोहिं देई, अवधि पारु पावउ जेहि सेई ॥
दो०-देव देवअभिषेक हित गुरुअनुसासन पाइ ।
आनेउ सब तीरथसलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०८॥
एक मनोरथबड मन माही, सभय सकोच जात कहि नाही ।
कहहुतात प्रभु आयसु पाई, बोले बानि सनेह सुहाई ॥
चित्रकूट मुनि-थल तीरथ बन, खग मृग सरि सरनिर्झरगिरिगन ।
प्रभु पदअंकित अवनि बिसेखी, आयसु होइ त आवउ देखी ॥
अवसि अत्रिआयसु सिरधरहू, तात बिगत-भय कानन चरहू ।
मुनिप्रसादु बन मंगलदाता, पावन परम सहावन भ्राता ॥
रिषिनायक जहं आयसु देही, राखेहु तीरथजल थल तेही ।
सुनिप्रभुबचन भरत सुख पावा, मुनि-पद-कमल मुदितसिरनावा ॥
दो०-भरत राम-सवादु सुनि सकल-सु-मंगल-मूल ।

सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुर-तरु-फूल ॥३०९॥
धन्य भरत जय राम गोसाईं, कहत देव हरषत बरिआईं।
मुनि मिथिलेस सभा सब काहू, भरत-बचन सुनि भयउ उछाहू ॥
भरत - राम - गुन-ग्राम-सनेहू, पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन, नेमु प्रेमु अति पावन पावन।
मतिअनुसार सराहन लागे, सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम-भरत संबादू, दुहुँ समाज हिय हरषु बिषादू।
राममातु दुखु-सुखु-सम जानी, कहि गुन राम प्रबोधीं रानी ॥
एक कहहिं रघुबीरबड़ाई; एक सराहत भरतभलाई।
दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैलसमीप सुकूप।
राखिय तीरथतोय तहँ पावन अमिय अनूप ॥३१०॥
भरत अत्रिअनुसासन पाई, जलभाजन सब दिये चलाई।
सानुजआपु अत्रि मुनि साधू, सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथु पुन्य थल राखा, प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा।
तात अनादि सिद्ध थल एहू, लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा, कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा।
बिधिबस भयउ बिस्व उपकारू, सुगम अगम अति धरमबिचारू ॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा, अति पावन तीरथ जलजोगा।
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी, होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥
दो०—कहत कूपमहिमा सकल गये जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ-पुन्य प्रभाउ ॥३११॥
कहत धरम इतिहास-सप्रीती, भयउ भोर निसि सो सुख बीती।
नित्यनिबाहि भरतु दोउ भाई, राम अत्रि गुरु-आयसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादे, चले राम बन-अटन पयादे।
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं, भइ मृदु भूमि सकुचि मनमनहीं ॥
कुस कंटक काँकरी कुराईं, कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे, बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे।

सुमन बरषि सुर घन करछाहीं बिटप फूलि फलतृन मृदुताहीं ॥
मृगबिलोकि खग बोलि सुबानी, सेवहिं सकल रामप्रिय जानी।
दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम-प्रान-प्रिय भरत कहुँ यह न होइ बडि बात ॥३१२॥
एहि बिधिभरत फिरतबन माहीं, नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं।
पुन्य जलास्रय भूमि बिभागा, खग मृग तरुतृन गिरिबनबागा ॥
चारु बिचित्र पबित्र बिसेखी, बूझत भरतु दिव्य सबु देखी।
सुनि मनमुदित कहत रिषिराऊ, हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥
कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा, कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई, सुमिरत सीयसहित दोउ भाई।
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा, देहिं असीस मुदित बनदेवा।
फिरहिं गये दिन पहर अढाई, प्रभु-पद कमल बिलोकहिं आई॥
दो०—देखे थलतीरथ सकल भरत पाच दिन मांझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु गयउ दिवस भइ साँझ ॥३१३
भोर न्हाइ सबु जुरा समाज, भरत भूमिसुर तिरहुतिराज ॥
भलदिन आजु जानि मनमाहीं, रामु कृपालु कहत सकुचाहीं।
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी, सकुचि राम फिर अवनि बिलोकी
सीलु सराहि सभा सब सोची, कहुँ न रामसम स्वामि सकोची ॥
भरत सुजान रामरुख देखी, उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी
करि दण्डवत कहत कर जोरी, राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
मोहिं लगि सबहिंसहेउसंतापू, बहुत भाँति दुख पावा आपू।
अब गोसाइं मोहि देउ रजाई, सेवउ अवध अवधि भरि जाई ॥
दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जन देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि लगि कोसलपाल कृपाल ॥३१४॥
पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं, सब सुचि सरस सनेह लगाईं।
राउर बदि भल भव-दुख-दाहू प्रभु बिनु बादि परम-पद-लाहू ॥
स्वामि सुजान जानिसबहीकी, रुचि लालसा रहनि जन जी की।

प्रनतपालु पालहिं सब काहू, देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो, किये बिचार न सोच खरो सो।
आरति मोर नाथ कर छोहू, दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू ॥
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी, तजि सकोचु सिखइय अनुगामी।
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी, खीर-नीर-बिवरन-गति हंसी ॥
दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अवसर-सरिस बोले रामु प्रबीन ॥३१५॥
तात तुम्हारि मोरि परिजन की, चिंता गुरहि नृपहि घर बन की।
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू, हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु, स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु।
पितु आयसु पालिय दुहुँ भाई, लोक बेद भल भूप भलाई ॥
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले, चलेहु कुमग पग परहिं न खाले।
अस बिचारि सब सोच बिहाई, पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥
देसु कोसु पुरजन परिवारू, गुरुपद-रजहिं लाग छरुभारू।
तुम्ह मुनि-मातु-सचिव-सिख मानी, पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥
दो०-मुखिया मुख सो चाहिये खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥३१६॥
राज-धरम-सरबसु एतनोई, जिमि मन माँह मनोरथ गोई।
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती, बिनु अधार मन तोष न सांती ॥
भरत सीलु गुरु सचिव समाजू, सकुच सनेह बिबस रघुराजू।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं, सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥
चरनपीठ करुनानिधान के, जनु जुग जामिक प्रजाप्रान के
संपुट भरतसनेह रतन के, आखर जुग जनु जीवजतन के ॥
कुलकपाट कर कुसल करम के, बिमलनयन सेवा-सु-धरम के।
भरत मुदित अवलंब लहे तें, अस सुख जस सिय राम रहे तें ॥
दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१७॥

सोकुचालि सब कहँ भइ नीकी, अवधि आस समजीवनिजी की।
नतरुलषन सिय-राम- बियोगा, हहरि मरत सबु लोग कुरोगा॥
रामकृपा अवरेब सुधारी, बिबुधधारि भइ गुनद गोहारी।
भेटत भुज भरि भरत सो, राम-प्रेम-रसु कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा, धीर-धुर-धर धीरजु त्यागा।
वारि-ज-लोचन मोचत बारी, देखि दसा सुरसभा दुखारी॥
मुनिगन गुरु धुर धीर जनक से, ग्यानअनल मन कसे कनक से।
जे बिरचि निरलेप उपाये, पदुमपत्र जिमि जग जलजाये॥
दो०-तेउ बिलोकि रघुबर-भरत-प्रीति अनूप अपार।
भये मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥३१८॥
जहाँ जनकगुरुगति मति भोरी, प्राकृत प्रीति कहत बडि खोरी।
बरतन रघुबर-भरत-बियोगू, सुनि कटोर कविजानिहि लोगू॥
सो सकोचु रसु अकथ सुबानी, समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी।
भेंटि भरत रघुबर समुझाये, पुनि रिपुदवनु हरषि हिय लाये॥
सेवक सचिव भरत-रुख पाइ, निज निज काज लगे सब जाई।
सुनि दारुनदुखु दुहुँ समाजा, लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई, चले सीस धरि रामरजाई॥
मुनि तापस बन देव निहोरी, सब सममानि बहोरि बहोरी॥
दो०-लपनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय-पद-धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल-सुमंगल मूरि॥३१९॥
सानुज राम नृपहि सिर नाई, कीन्हि बहुत बिधिबिनय बडाई।
देव दयाबस बड दुखु पायेउ, सहितसमाज काननहिं आयेउ॥
पुर पगु धारिय देइ असीसा, कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा।
मुनि महिदेव साधु सनमाने, बिदा किये हरि हर-सम जाने॥
सासु समीप गये दोउ भाई, फिरे बंदि पग आसिष पाई।
कौसिक बामदेव जाबाली, परिजन पुरजन सचिव सुचाली॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा, बिदा किये सब सानुज रामा।

नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे, सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥
दो०—भरत-मातु-बन्दि प्रभु सुचि सनेह मिलि भेंटि।
विदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि ॥३२०॥
परिजन मातुपितहिं मिलि सीता, फिरी प्रान-प्रिय-प्रेम-पुनीता।
करि प्रनामु भेंटी सब सासू, प्रीति कहत कवि हिय नहुलासू ॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई, रही सीय दुहुँ प्रीति समाई।
रघुपति पटु पालकी मँगाई, करि प्रबोधु सब मातु चढाई ॥
वार वार हिलि मिल दुहु भाई, सम सनेह जननी पहुँचाई।
साजि बाजि गज बाहन नाना, भूप भरतदल कीन्ह पयाना ॥
हृदय रामु सिय लखन समेता, चले जाहिं सब लोग अचेता।
वहस बाजि गज पसु हिय हारे, चले जाहि परबस मन मारे ॥
दो०—गुरु-गुरु-तिय-पद बन्दि प्रभु सीता लषन समेत।
फिरे हरष-विसमय-सहित आये परननि केत ॥३२१॥
विदा कीन्ह सनमानि निषादू, चलेउ हृदय बड बिरह बिषादू।
कोल किरात भिल्ल वनचारी, फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु सियलषन बैठि वटछाहीं, प्रिय-परिजन-बियोग बिलखाहीं।
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी, प्रिया अनुजसन कहत बखानी ॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी, श्रीमुख राम प्रेमवस बरनी।
तेहि अवसर खगमृगजल मीना, चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
विबुध बिलोकि दसा रघुवर की, बरषि सुमन कहि गति घर घर की।
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो, चले मुदित मन डर न खरो सो ॥
दो०—सानुज सीयसमेत प्रभु राजत परनकुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरे सरीर ॥३२२॥
मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू, रामबिरह सबु साजु बिहालू।
प्रभु-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं, सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पार सब भयऊ, सो बासर बिनु भोजन गयऊ।
उतरि देवसरि दूसर बासू, रामसखा सब कीन्ह सुपासू ॥

सई उतरि गोमती नहाये, चौथे दिवस अवधपुर आये।
जनकु रहे पुर बासर चारी, राज काज सब साज सँभारी ॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू, तिरहुत चले साजि सब साजू।
नगर-नारि-नर गुरु-सिख मानी, बसे सुखेन राम-रज-धानी ॥
दो० रामदरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जियत अवधि की आस ॥३२३॥
सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे, निज निज काज पाइ सिख ओधे।
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई, सौंपी सकल मातुसेवकाई ॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे, करि प्रनाम बरबिनय निहोरे।
ऊँच नीच कारज भल पोचू, आयसु देब न करब सँकोचू ॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाये, समाधानु करि सुबस बसाये।
सानुज गे गुरुगेह बहोरी, करि दंडवत कहति कर जोरी ॥
आयसु होइ त रहउँ सनेमा, बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा।
समुझब कहब करब तुम्ह जोई, धरमसारु जग होइहि सोई ॥
दो० सुनि सिख पाइ असीस बडि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंहासन प्रभुपादुका बैठारे निरुपाधि ॥३२४॥
राममातु गुरुपद सिरु नाई, प्रभु पद-पीठ-रजायसु पाई।
नंदिगाँव करि परनकुटीरा, कीन्ह निवास धरम धुर-धीरा ॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी, महि खनि कुस साथरी सवाँरी।
असन बसन बासन ब्रत नेमा, करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी, मन तन बचन तजे तृन तूरी।
अवधराजु सुरराजु सिहाई, दसरथधनु सुनि धनद लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा, चचरीक जिमि चंपक बागा।
रमाबिलास रामअनुरागी, तजत बमन जिमि जन बडभागी ॥
दो० राम-प्रेम-भाजन भरत बडे न यहि करतूति।
चातक हंस सराहियत टेक बिबेक बिभूति ॥३२५॥
देह दिनहुँ दिन दूबरि होई, घट न तेजु बल मुखछबि सोई।

नित नव रामप्रेम-पनु-पीना, बढ़त धरमदलु मनु न मलीना ॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे, बिलसत बेतस बनज बिकासे ।
सम दम संजम नियम उपासा, नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी, स्वामिसुरति सुरबीथि बिकासी ।
राम-प्रेम-बिधु अचल अदोखा सहित समाज सोह नित चोखा ॥
भरत रहनि समुझनि करतूती, भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ।
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं, सेस-गनेस-गिरा-गमु नाहीं ॥
दो० नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय न समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहुभाँति ॥३२६॥
पुलक गात हिय सिय रघुबीरू, जीह नाम जपु लोचन नीरू ।
लषनु राम सिय कानन बसहीं, भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू ,सब बिधि भरत सराहन जोगू ।
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं, देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥
परमपुनीत भरतआचरनू , मधुर-मंजु-मुद-मंगल-करनू ।
हरन कठिन कलि-कलुष-कलेसू . महा-मोह-निसि दलन दिनेसू ॥
पाप - पुंज - कुंजर - मृग - राजू , समन सकल-संताप-समाजू ।
जनरंजन भंजन भवभारू, रामसनेह सुधा-कर-सारू ॥
छंद० सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनमु न भरत को ।
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि रामसनमुख करत को ॥
सो० भरतचरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय-राम-पद-प्रेम अवसि होइ भव-रस-बिरति ॥३२७॥

टिप्पणियां

प्रथम पृष्ठ श्लोक कठिन शब्दार्थ – वामांके = बाँयी ओर में विभाति = शोभित है। भूधरसुता = पार्वती जी। देवापगा = गङ्गा जी। मस्तके = मस्तक पर। भाल = ललाट। बालविधु = द्वितीया का चन्द्रमा। गरलं = विष, उरसि = हृदय पर। व्यालराय = सर्पराज। सोऽयं = वही। भूति विभूषणः = भस्म रमाये हुए। सुरवर = देवताओं में श्रेष्ठ। सर्वाधिप = सबके स्वामी। सर्वदा शर्व. = सदा एक रस। सर्वगत = सर्व व्यापक। शिव = कल्याण रूप, शशि निभः – चन्द्रमा के समान उज्वल, पातुमाम् = मेरी रक्षा करे। यो = जो, न अगतोभिषेकतस्तथा = न अभिषेक मिलने सुखी। मलौ = मलिन मुखाम्बुज = मुख कमल। मंजुल मंगल = सुन्दर कल्याण। नीलाम्बुज श्यामल = नीले कमल के समान श्याम। कोमलाङ्ग = कोमल अंग, समारोपित = विराजमान हैं। पाणौ = हाथों में। महा सायक = विशाल बाण। चाप = धनुष। नमामि = नमस्कार करता हूँ।

दोहा—मन मुकुर = मन रूपी दर्पण, फल चारि = धर्म अर्थ काम मोक्ष,

भुवन चारिदस = चौदह भवन। भूधर = पर्वत। सुकृति मेघ = पुन्य रूपी मेघ। सुखवारी = सुख रूपी जल

रिधि सिधि सपति नदी = ऋद्धि सिद्धि व सम्पति रूपी नदियाँ। अवध अवुध = अयोध्या रूपी समुद्र

टिप्पणी भुवन चारि .... सुन्दर सब भाँती = साँग रूपक अलकार

मनोरथ बेली = मनोरथ रूपी वेलि, प्रमुदित = प्रसन्न, आनन्दित, मुनि = वशिष्ठ, राऊ = दशरथ

अभिलाष = इच्छा, अछत = जीते जी,

पृष्ठ २ जरठपन = वृद्धापन, भुआलु = भूपाल, रौरहि = आपके समान, रेणु = रज

पृष्ठ ३ -जरनि = हृदय की जलन, पाँचहि = पाँच पंचों का अभिमत = मनोरथ, बिरवा = पौदा, बरस करोरी = करोड़ों वर्ष, वारा = देर, पौड़ = वृक्ष

पृष्ठ ४— फरकहि मंगल अंग सुहाये = मंगल जनक शकुन (शङ्का यह है कि मंगल मे वनवास का अमंगल कार्य कैसे हुआ, समाधान यह है कि वनवास ही मंगल कार्य था)

टि—भरत आगमन सूचक अहहीं = रामचन्द्र जी भरत जी के मिलने को ही सर्वोत्तम मगल सूचना समझते हैं। यहाँ राम का सच्चा प्रेम भरत के प्रति प्रतीत होता है।

कमठ = कछुआ (उपमा अलकार) कोकिल बयनी = कोयल के से कण्ठ वाली, विधु वदनी = चन्द्रमुखी, मृग-सावक नयनी = हरिण के बच्चे के से नेत्रो वाली।

टि अवध की नारियां राम से इतना प्रेम करती है कि राम के कल्याण के लिये सभी देवताओं की पूजा कर रही हैं।

अरघ देहि = जब कोई पूज्यमान घर जाता है तो उसके स्वागत में, मंगल सूचनार्थ जल का अर्घ्य देते हैं।

पृष्ठ ५ हस वंस अवतस = सूर्य वंश के भूषण।

विमल बस यह अनुचित रीती, बंधु विहाय वड़ेहि अभिषेकू। इस चौपाई में रामचन्द्र जी इस युवराज प्रथा को अनुचित बतलाते है। वे नही चाहते कि पैदा होने से अब तक सब कार्य एक साथ हुए और अब युवराज पद अकेले मुझे मिले

दो० रघुकुल कैरव-चन्द = सूर्य वंश रूपी कुमोदिनी के लिए चन्द्र के समान रामचन्द्र जी। उपमा अलंकार।

काली = कल (आने वाला) देव कुचाली = कुचाल वाले

टि० देव कुचाली–देवता राम का अभिषेक नहीं चाहते थे उनका भला वनवास में था क्योंकि राक्षसों का दमन करवाना था। वे सरस्वती से विनय करते है कि किसी प्रकार राम राज्य को छोड़कर वनवास चले जायँ।

सुनि सुर ....हिमराती = रूपक अलंकार

पृष्ठ ६—ऊँच निवास नीच करतूती ....विभूती = यह नीति की चौपाई है- नीच प्रकृति वाले को ऊँचा स्थान मिल जाय तो वह दूसरे के ऐश्वर्य को नहीं देख सकता।

यहाँ गोस्वामी जी ने यह दिखला दिया है कि किस प्रकार देवताओं द्वारा विघ्न का सूत्रपात होता है।

टि०—ऊतरु............ ढारइ आँसू = मंथरा कहती कुछ नहीं है केवल आँसू गिरा रही है। यहाँ गोस्वामी जी का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म निरीक्षण है।

रिपुदमन = शत्रुघ्न। सेज तुराई = रुई की सेज।

पृष्ठ ७—टि०—जेठ स्यामि .... रीति सुहाई। कैकेयी राजनीति तथा कुल की मर्यादा को अच्छी तरह जानती थी।

पिआरी = प्यारी (अवधी भाषा) विसेषी = विशेष

टि०—प्रान तें प्रिय......... ....कस तोरे। कैकेयी को राम प्राणों से भी अधिक प्यारे थे।

रुरेहु लागा = बुरा लगा।

बवासो लुनिय लहिय जो दीन्हा = जैसा बोया वैसा काटा जो दिया गया वह पाया।

गूढ़ कपट = छल से भरे हुए। तीय अधर बुधि = स्त्री

स्वभाव से आधी बुद्धि वाली

पृष्ठ ८--जरि = जड़। सवति = सौति (कौशल्या) रूँधहुँ = दृढ़ करो। रूपक अलंकार।

प्रपंचु = छल कपट। कपट प्रबोध = कपट का ज्ञान कराया दूध के माखी = अप्रिय। जिस प्रकार दूध में पड़ी हुई मक्खी क चाहे जब फेंक देते है।

कद्रु विनतहि = अन्तर्कथा -कश्यप जी के दो स्त्रियाँ थीं इनमें से एक का नाम कद्रू था यह सर्पों की माता थी। दूसरी विनता गरुड़ की माता थी। इन मे इस बात पर वाद-विवाद हुआ कि सूर्य के घोड़ों के पुच्छ का रग कैसा है? विनता ने कहा श्वेत है। और कद्रू ने कहा काला है। इस बात को निव-टाने को दोनो देखने को चली। परन्तु शर्त ठहरी कि जिसकी बात झूठी निकलेगी वही दासी बनकर रहेगी। तभी अपनी माता का वचन सत्य करने के लिए सर्प घोड़े की पूँछ से जा लिपटे और विनता को छलसे बता दिया कि सूर्य के घोड़ो कीपूँछ का रंग काला है इससे विनता को दासी होकर रहना पड़ा था। नेब = नायब, छोटे पदाधिकारी।

पृष्ठ ६ उकठ कुकाठू = सूखा काठ। बकहि = बगुली। मराली = हंसिनी। फुरि = फुरि = सत्य। दाहिना बाँया जानना = भला बुरा समझना। अघ = पाप, तिय माया = स्त्री चरित्र। ताका = सोचा। परिपाका =,पायेगा।

दो०--पाऊ कूप तव वचन पर...... ....करवहित लागी। इस पर कैकेयी मन्थरा के वश में इतनी होगई कि उसके कहने पर पति और पुत्र को भी छोड़ सकती है।

कपट छुरी = कपट रूपी छुरी। उर पाहन = हृदय रूपी पत्थर। टेयी = पैना किया (अवधी भाषा का शब्द है) रूपक

अलंकार। देहु = राम को वनवास दो। लेहुँ = भरत को राज्य लो और कौशल्या का सब आनन्द छीनलो।

पृष्ठ १० चख पूतरि = आँखो की पुतली (बहुत प्रिय)

बिपति बीजु..............दुख फल परिनामा = सांग रूपक अलंकार।

प्रविसहि = घुसते है। निर्गमहि निकलते है

पृष्ठ ११--पट्ट वस्त्र। कुवेषता = बुरा भेष। फावी=अच्छा लगा। अन-अहिवातु-सूच जनुभावी = मानो होनहार ने विधवा पन की सूचना दी है।

छन्द-भुअंग भामिनि = कैकेयी सर्पिणी के समान है। दोनो इच्छा जीभ के समान, वर दाँतों के समान है 'उपमाअलंकार'

पृष्ठ १२--अवगाह = अथाह। पुंजा = समूह। कुलह = टोपी।

दोहा- भूप मनोरथ.......... " भयकर बाज रूपकअलंकार

ससिकर छुअत विकल जिमि कोकू = चन्द्रमा की किरणो छूकर चकवा व्याकुल होजाता है। 'उपमा अलकार'

सचान = बाज। लावा =लवा चिड़िया।अपनहुति अलंकार

पृष्ठ १३—राजा शिवि-एक समय राजा शिवि ६२ यज्ञ करके ६३ वाँ यज्ञ कर रहे थे तब इन्द्र को भय हुआ कि यह ८ यज्ञ और करके शतक्रतु होकर इन्द्रासन छीन लेगा। तब इस भय मे इन्द्र ने अग्नि को कबूतर बनाया और आप बाज बनकर झपटता हुआ उसके पीछे हो लिया। कबूतर उड़ता हुआ राजा शिवि की शरण मे आया। तब यज्ञ करते हुए राजा ने कबूतर को छिपा लिया और बाज को हटा दिया तब बाज बोला आप मेरा आहार छिना कर व्यर्थ पाप के भागी होते है। राजा ने कहा कुछ हो यह मेरी शरण आगया है इसको मैं न दूंगा

बहुत झंझट के बाद यह बात निश्चित हुई कि इस कबूतर के बराबर राजा अपना माँस देदे। राजा ने अपने शरीर का मास जगह-जगह से काट काट कर तराजू पर चढ़ा दिया परन्तु कबूतर के बराबर नही हुआ तब वह स्वयं तराजू पर बैठने लगा। इतने ही मे विष्णु भगवान ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और राजा शिवि का कल्याण कर दिया।

दधीचि--जब इन्द्र और वृत्रासुर मे घोर संग्राम हुआ और किसी तरह वृत्रासुर परास्त न हुआ तब इन्द्र विष्णु भगवान के पास प्रार्थना करने लगा कि इस असुर के मारने का उपाय बताइये तब भगवान बोले नैमिषारण्य मे दधीचि मुनि रहते हैं उनके हाड़ो के अस्त्र से यह राक्षस मरेगा। तब सब को लेकर वहाँ गया और उनसे प्रार्थना की ऋषि ने देवताओ के कार्य के लिये हाड़ देना स्वीकार कर दिया। जब उनके हाड़ों का वज्र बनाया तब दैत्यों का नाश हुआ इस प्रकार दधीचि ऋषि ने परोपकार के लिये प्राण त्याग दिये थे

राजा बलि--जब राजा बलि तीनो लोकों का स्वामी हो गया तब इन्द्र ने दुखी हो कर विष्णु भगवान की प्रार्थना की कि मेरा राज्य मुझे दिला दो तब भगवान बामनिया का रूप धर कर राजा बलि पर गये और राजा से बोले कि मुझे तीन पैड जगह दे दो जब बलि प्रतिज्ञा कर चुका तब वामन जी ने विराट रूप धारण कर के दो डग मे ब्रह्मलोक तक नाप लिया और बाकी एक पैड और माँगी तब राजा ने कहा तीसरे पैड मे मेरी पीठ नाप लो इस पर भगवान प्रसन्न हो गये और राजा बलि को पाताल का राज्य दे दिया।

जो पर लोन देई =घाव पर नमक डालना दुख मे दुख बढ़ाना

पृष्ट १४-दोउ बर=दोनो वरदान, भरत की राजगद्दी व राम-

वनवास) कूल=किनारा । हठ-रानी का हठ धारा के समान है।
कूबरी के वचनों का प्रवाह ही भँवर है। राजा नदी के किनारे के
पेड़ के समान है। इस प्रकार विपत्ति रूपी नदी समुद्र की ओर
जारहीहै। रूपक पाठीन=मीन । माहुरु=विष।

पृष्ठ १५-हमव ठाठाउ फुलाउव गाला-हँसना और गाल
फुलाना दोनों एक साथ नहीं हो सकते। मारसि गाय नहरु आ
लागी=नहरुआ रोग के उपचार के लिये गाय मारी जाय और
रोग ठीक न हो तो पीछे पछताना पड़ता है।

पृष्ठ १६ कुसाज=बुरे वेश मे । भुअंगू=सर्प । मीच
(मृत्यु)=मौत ।

पृष्ठ १७-जीभ रूपी कमान से वचन रूपी वाणों द्वारा राजा
रूपी कोमल निशान को कैकयी मारने लगी। रूपक अलंकार।
सरीरु=शरीर। भानुकुल भानू=श्री राम चन्द्रजी। आनन्द निधान्
-आनन्द के भंडार। विगत=रहित। दूसन=दोषों। बाग विभूषण=
वाणी के आभूषण। तोषनि हारा=सन्तुष्ट करके वाला। अरंडु
=रेंडी का वृक्ष। धीर-गुन-उदधि-अगाधू=गुणों समुद्र। सति भाऊ
=सत्य भाव से । वक्रगति=टेढ़ी चाल । ज़ोंक= एक कीड़ा
होता है, जो सदा पानी पर टेढ़ा चलता है।

पृष्ठ १८ लागहि कुमुख........ सलिल सुहाये। उपमा
अलंकार श्रवनि=सुना। वारि प्रवाहू=आसुओं की धारा वहने
लगी। आसुतोष=शीघ्र प्रसन्न होने वाले। अवढर दानी-महा-
दानी। प्रेरक=प्रेरणा देने वाले।

टि० दो० तुम्ह प्रेरक ....सील सनेह। इस दोहे मे
दिखलाया है दशरथ जी महादेव जी से ऐसी प्रार्थना करते है कि
राम दशरथ जी की आज्ञा न मान कर घर पर रहें। उनको राम
इतने प्रिय है कि राम के कारण वे अपयश तथा नरक का दुख

भोगने को तैयार है। केवल राम लोचनो के ओट नहीं होने चाहिये।

पृष्ठ १९—परिहरिय=त्याग दो। सुतीछी=सुतीक्षण। बीछी=बिच्छू। दवारी=दावाग्नि। दो मुख सुखरहि.......... ..बजाय। अपहुति अलंकार स्रवहिं=बहते। करुन कटकई=करुणा रस का दल। छाई=बनाकर। पावक= अग्नि। दीखा=देखना। चीखा—चखना। रघुबंस बेनुबन=रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिये। कवन=क्या टि० सबविधि अगमअगाध दुराऊ=स्त्री का स्वभाव सदा अथाह रहता है। मुकुरु=दर्पण। दो० काहन पावक........ ...कालु नखाय। यह नीति का दोहा है इसका भावार्थ है कि स्त्री सब कुछ कर सकती है।

पृष्ठ २०—समत=सलाह, सम्मति। रद=दाँत। अलीहा=झूँठ। श्रवै=बरसावै। अनलकण=आग की चिनगारी। तूल=समान। खरभरु=खल बली मच गई।

पृष्ठ २१—रिसरूखी=क्रोध से जली हुई। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी=अपन्हुति अलंकार। व्याधि असाधि=असाध्यरोग। स्रवत=बहुते हैं। धनद पदवी कुबेर की पदवी। सुकृत=शुभ कर्म। आधाही=सन्तुष्ट होगे।

पृष्ठ २२—सिय मूला=राज्यलक्ष्मी। करके=कसकने लगे जवास =जवासा जो बरसात मे सूख जाता है। पावस=वर्षा ऋतु। माँजहि=माँजा फेन मापी=बदहवास। कृशानु—आग। मूक=चुप चाप। वाम=टेढ़ा। सांप छछूंदर केरी=साँप यदि छछूंदर कोपकड़ ले तो यदि खा जाय तो मरता है और छोड़ता है तो अन्धा होता है। धरमक टीका=सबसे ऊँचा धर्म।

पृष्ठ २३ लेस=तनिक भी। कलेसु=कष्ट। चरन सरोरुह सेई —चरण कमल के सेवी। हरासू=दुख। वय। आयु। बात=

सम्बन्ध दारुन दुसह दाह=भयानक दुख। सिरुनाई=सिरनवाकर। पति प्रेम पुनीता=पति के प्रेम मे लीन।

पृष्ठ २४ जीवन नाथू=स्वामी सन=से।

लेखति=लिखती है। मुखर=ध्वनि। रवि कुल कैरव=विपिन विधु-सूर्य वंश रूपी कुमुदिनी के वन के लिये चन्द्रमा के समान= उपमा अलंकार। जीवन मूरि=संजीवनी जड़ी। जुगवित=देखती रहती हूं। दीप बाति टारन=दीपक की बत्ती सरकाने को कहना विरंचि=विधाता। पाहन कृमि=पत्थर के कीड़ों के समान। चन्द्र-किरण रस रसिक चकोरी=सीता जी। यहाँ कोमलता दिखलाई गई है। डाबर=पोखर।

पृष्ठ २५ प्रबोधन=समझाने लगे मोर। मेरा = नीक=भला। आयुस=आज्ञा। अन्तर्कथा-गालव मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। जब विद्या पढ़ चुके तब हठ पूर्वक विश्वामित्र से दक्षिणा के लिये कहा तब रिस होकर गुरू ने आठ सौ श्याम कर्ण घोड़े माँगे इस पर गालव मुनि को कष्ट से ६०० घोड़े तौ मिल गये २०० की कमी पूरी न हो सकी। दो नहुष एक बार राजा नहुष को इन्द्रा-सन का पद मिल गया उस उच्च पद के अभिमान में आ इंद्राणी को भी लेना चाहा। इन्द्राणी के बहुत समझाने पर भी न माना। इस की हठ देख इन्द्राणी ने कहला भेजा कि पालकी मे ऋसियों को लगा कर उस पर बैठ कर आओ तब भोग कर सकते हो। राजा अन्धा हो रहा था। ऋषियो को पालकी मे लगा कर चलदिया। ऋषि धीरे धीरे चलते थे। इसको इन्द्राणी से मिलने की बड़ी उत्कंठा थी इस लिये शीघ्र चलने केलिये बारम्बार कहता जाता था 'सर्प सर्प' अर्थात 'शीघ्र चलौ शीघ्रचलौ तब तब अग-स्त्य जी को बड़ा क्रोध आया और पालकी को छोड़ साप दिया कि जा सर्प होजा। तब राजा नहुष सर्प हो गया पय। देहि=पैदल

पद त्राना= पनहीं वृक=भेड़िया । रजनी चर=राक्षस । व्याल=सर्प

पृष्ठ २६-हंस गवनि=हंस की सी चाल वाली । मानस सलिल सुधा=अमृत के समान मान सरोवर का पानी । लवनि पयोधि =खारी समुद्र । मराली-हंसिनी । विपिन करीला=करीलों के बाग में । चन्द वदनि-चन्द्रमुखी । अवसि=अवश्य । अवनि कुमारी= सीताजी । जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते पिय बिनु तियहिं तरनि-तेहुँ ताते । यहाँ पति पत्नी का अटूट सम्बन्ध दिखलाया गया है वारी=पानी ।

पृष्ठ २७—कुस-किसलय=डाभ और पत्ता । मनोजतुराई= कामदेव की शैया । अवध=अयोध्या । अवधि=चौदह वर्ष की अवधि स्रम=थकावट बारि=बयारि । स्वकन=पसीना ।आसिख =आशीर्वाद । तजब छोभु=छोड़ते हुये भी दुख होता है । जनि-छाड़िअ छोहू=बिना छोड़े दुख होता है क्योंकि पति वियोगहोगा ।

पृष्ठ २८ अहि वात=सुहाग । सनीरा=अश्रुमय । सिरान= समाप्त हो गये ।

पृष्ठ २६ परितोषू = सन्तुष्ट, सान्त्वना ।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधि-कारी ।गोस्वामी जी ने राजनीति का कितना गूढ़ तत्व कितनी सरलता से रख दिया है ।

तुहिन = पाला । तामरस = कमल । मन्दर = मन्दराचल । मेरु = सुमेरु पर्वत ।

कीरति भूति = बड़ाई व विभूति । सुगति = मोक्ष । दव = दावानल ।

पृष्ठ ३० कुदाव = बुरा घात । नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी, राम विमुख सुत ते हित हानी । यहाँ पर सुमित्रा ने सच्ची माता होने का कर्त्तव्य बताया है कि जिसका पुत्र राम-

भक्त है वही माता, माता कहलाने योग्य नहीं तो बाँझ अच्छी।

बागुरि विषम तुराय = कठिन बन्धन को तोड़कर।

पृष्ठ ३१—मींजहिं=मलते हैं। सोक जनित = शोक के कारण दारुन दाहू = भयंकर दाह।

पृष्ठ ३२ बनिता = स्त्री। सन्तोष =सान्त्वना दी। भुआल = राजा।

आरतनादू = करुणाध्वनि। हरष-बिषाद-बिबस सुरलोकू = देवता आनन्द व दुख के वस होगये। नरनाहू = राजा।

सत्य संध = सत्य प्रतिज्ञा। उपाय‍क दवा = अनेक उपाय करना। प्रान अवलंबा = प्राणों का आधार। परिनामा = निश्चित। घोर जन्तु सम = भयानक जीवों के समान।

टि०—विना रामचन्द्र जी के सभी प्रियजन व वस्तुयें भयानक प्रतीत हो रही है।

पृष्ठ ३ दोहा—हय गज········ ·····हंस चकोर=रामचन्द्र जी के वियोग मे पक्षी भी व्याकुल होरहे हैं। पशु भी आहार छोड गये। गहबर = बना। बिहाई=गये।

पृष्ठ ३५ निन्दह आपु सराहि मीना········ ·····अवधवासी अपने आप को अभागा बतलाते है और मछली को भाग्यवान क्योकि मीन रूपी नेत्रों से अश्रु बह रहे है।

देवसरि = मन्दाकिनी नदी। सूला = दुखकष्ट। मज्जन = स्नान। भानुकुल केतु = रामचन्द्रजी। नर अनुहरत = मनुष्य के समान। ससृति = सृष्टि।

बनभेसु अहारू = रहन सहन और भोजन।

पृष्ठ ३६—लोचन लाहु = नेत्रो का लाभ। सिसुंपा = शीशम वृक्ष। जुहारु = प्रणाम। पलोटत = दबाते हैं।

सुरपति = इन्द्र। पटुतर = वस्त्र। साथरी = आसन। सुरेश सखा = दशरथ।

पृष्ठ ३७— केही = किसका। दिनकर-कुल-विटप-कुठारी = सूर्यवंश रूपी वृक्ष को काटने वाली (कैकई)। भ्रम फन्दा = सन्देहमय जाल। नाकपति = स्वर्ग का स्वामी (इन्द्र)। बादि = विवाद।

स्वभि = कामधेनु।

नोट यहाँ पर गोस्वामीजी ने आध्यात्मिक विचार रक्खा, है भक्तों, ब्राह्मणों और देवताओं को सुख पहुँचाने के लिये श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य रूप धारण कर के संसार के कार्यों को कर रहे है।

भिनुसारा = रात।

पृष्ठ ३८ —वटक्षीर = बरगद का दूध।

नोट धर्म की सत्य परिभाषा गोस्वामीजी ने प्रधान सचिव सुमन्तजी के द्वारा कहलवाई है।

संभावित = सम्भव। सन = से। पातकु = पाप। लक्ष्मणजी को क्रोध आता है परन्तु राम अनुचित समझकर शान्त कर देते है।

पृष्ठ ३९ आरति = करुणा, रोना। आरजु-सुतपदकमल= राम के चरण-कमल। चक्कवइ = चक्रवर्ती। एतादृस्य = ऐसा। फनि मनिहारी = सर्प मणि के रहित।

पृष्ठ ४० जोहहिं = देखता है।

छूअत सिला भइ नारि सुहाई.......मल्लाह रामचन्द्रजी से कहता है कि आपके चरणों की रज के प्रताप से पत्थर की अहिल्या स्वर्ग लोक को चली गई। परन्तु मेरी नाव कोमल काठ है।

कवारू = कार्य। अटपटे = अनोखे। तवनि = तेरी। करपी = अलग हो गई, खींचली।

पृष्ठ ४१- पखारन = धोने। सिहाने = प्रसन्न होना। गुह = निषाद। मणि मुदरी = मणिमय मुदरी। करुणायतन = रामचन्द्रजी। पारथिव = देवता। लोकप = संसार के पालक।
वागीसा = वचन सिद्ध (वाक्)।

पृष्ठ ४२ परितोषु = समझा कर। प्रातकृत = नित्य कर्म क्रिया। प्रतिपच्छन्ह = शत्रु। कलुष-अनीक-दलन = पाप को समूह का नाश करने वाले।

पृष्ठ ४३ कुशल प्रश्न = कुशल समाचार। विगतस्रम = थकावट से दूर। पद-सरसिज = कमल चरन।
उपचार = उपाय। लघु वयसु = कम अवस्था। पारस = वह पत्थर जो लोहे को सोना कर देता है।

पृष्ठ ४४ विदूखा = प्यासा।

पृष्ठ ४५

पृष्ठ ४६ सिथल = थकित, निस्तेज। अंचय = पीना। स्वामिह = थके हुए। दामनि वरनि = विद्युत छटा। पखनवधु वदन = पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख। छमवि क्षमा करो।
गवारी = अज्ञान।

पृष्ठ ४७ दुह सकोच = एक तो पति समीप थे दूसरे पृथ्वी माता से उनकी उत्पत्ति थी इसलिये पृथ्वी से भी सकोच करती थीं।
पिकवयनी = कोकिल कंठी। खंजन मंजु = खंजन के समान नेत्र। महि अहि शीष = जब तक पृथ्वी शेषनाग के सिर पर है।
सरुज = रोगी। रूख = पेड़। वाद = व्यर्थ।

पृष्ठ ४८--असन = भोजन। गोचर = प्रतीत होती है।
गहवरि = गला भर कर।

पृष्ठ ४९ लोगन्ह = मनुष्य। काछे = धारण किये हुये।

ब्रह्म जीव बिच माया जैसी = जिस प्रकार कि ब्रह्म और जीव के बीच मे शरीर रूपी माया होती। रूपक अलङ्कार।

नोट— यहाँ पर अध्यात्मिक तथ्य बड़े सुचारु तथा सरल ढङ्ग से ब्रह्म, जीव तथा माया की स्थिति बतलादी है।

मधु-मदन-मध्य रति = वसन्त ऋतु और कामदेव के बीच में रति शोभित हो।

बुध-बिधु-बिच-रोहनि = बुद्ध और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी नक्षत्र शोभित है।

बराये = बचाकर।

अध्यात्मिक विचार जिन्होंने राम लक्ष्मण और सीता को मुनि वेष में देखा वे तो इस भवसागर से पार हो गये।

सरनि = तालाबों। बिरहित = त्याग कर। राजिव नैन = श्रीरामचन्द्रजी।

पृष्ठ ५०—त्रिकाल दरसी = भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों की बात जानने वाले। उद्‌वेग = (उद्वेग) कष्ट।

भू-सुर-रोषू = ब्राह्मणों का क्रोध। सन्तत = निरन्तर। श्रुति सेतू = वेदों की मर्यादा के रक्षक।

अध्यात्मिक विचार—छन्द श्रुतुसेतु⋯खल निसिचर अनी।

पेखन = दृश्य।

जग पेखन⋯⋯जाननिहारी, दार्शनिक भाव।

पृष्ठ ५१ विगत विकार = विकारो से रहित। प्राकृत = साधारण।

जस काछिय तस चाहिय नाचा = जैसा वेष हो वैसा ही नाचना चाहिए।

वाल्मीकिजी ने प्रभु का वास सीताजी बताया है यहाँ दार्शनिक व अध्यात्मिक भाव है।

जिन्ह के सवन...... रघुनायक।

पृष्ठ ५२ कोह = क्रोध। गारी = गाली। धनु परावा=पराया धन।

करम-वचन-मन राउरचेरा = मन वचन कर्म से जो आपका (राम का) सेवक है। डेरा = निवास। करि = हाथी।

विहारू = विहार करते हैं।

पृष्ठ ५३ अत्रि प्रिया निज तप बल आनी = मन्दाकिनी नदी को अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया अपने तपोबल से लाई थी क्योंकि वृद्ध ऋषियों को गङ्गाजी तक जाने मे बड़ा कष्ट होता था।

सब-पातक-पोतक-डाकिन = पाप रूपी पुत्रों का भक्षण करने वाली।

ठाहर =निवास स्थान। रति-रितु-राज समेत = बसन्त ऋतु मे रति और कामदेव के समान।

पृष्ठ ५४ अपर = दूसरे। बराई = बचाकर। जोहा = देखा गया।

चित्र लिखे ....अपन्हुति अलंकार।

नोट रामहिं केवल प्रेम प्यारा ....आध्यात्मिक भाव।

मंजु-ललित-वर-बेलि-वितान = अति सुन्दर श्रेष्ठ लताओं का मण्डप छाया हुआ है।

पृष्ठ ५५- सुरतरु सरिस = कल्प वृक्ष के समान। विबुध वन = नन्दन वन। त्रिविध बयारि = शीतल मन्द सुगन्ध पवन।

कुरगा = मृग। मुदित विशेखी = विशेष आनन्दित। सुर-सरि = गङ्गा। दिनकर कन्या = यमुना। मेकल सुता = नर्मदा।

सत सहस होहिं सहसानन = एक लाख शेष के मुख हो।

डाबर कमठ = पोखर के कछुए। मन्दर = पहाड़।

पृष्ठ ५६ नाह नेह = पति प्रेम । साथरी = कुशों की सेज । मयन-सयन-सय = कामदेव की सैकड़ो सेजें ।

पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं = जैसे परछाहीं पुरुष का अनुसरण करती है । वासव = इन्द्र । सची = इन्द्र की पत्नी । जयंत = इन्द्र पुत्र ।

पृष्ठ ५७ मोचहि लोचन वारी = नेत्रो से आँसू बहाते है । अजस-अघ भाजन = अपयश और पाप के भागी । पयाना = गमन

नोट विप्र विवेकी······ ·····तेहि भाँति । उपमा अलंकार लाटी = लम्बी २ स्वाँस । अवधिकपाटी = चौदह वर्ष की अवधि रूपी कपाट लगे हैं ।

पृष्ठ ५८ बिदरेउ = फटा । यातना शरीर = दुख भोगने के लिए शरीर दिया है । तमसातीर = तमसा नदी के किनारे ।

मारेसि = मारी है । आतप = गर्मी । ओरे = ओले । निघटत = खतम होते ही ।

पृष्ठ ५६ अन्तर्कथा—ययाति—राजा ययाति ने घोर तप किया कि जिसके बल से वह इसी मनुष्य शरीर से इन्द्र पद पाने के लिए सीधा स्वर्ग लोक चला गया । इन्द्र ने इसका बड़ा सत्कार किया । अर्घ्य पाद्यकर इन्द्रासन पर बिठला दिया इस महिमा के कारण राजा फूल कर आपे से बाहर होगया । तब इन्द्र ने कपट से उसकी मिथ्या प्रशंसा की और पूछने लगा कि महाराज आपने ऐसे कौन २ से घोर तप या यज्ञादि किये हैं जिनसे आपको यह उच्च पद मिला । यह सुन राजा अपने मुख से उन सब कर्मों का वर्णन करने लगा । ज्यों २ वह कहता था त्यों २ उसके पुण्य क्षीण होते जाते थे । इस तरह जब सब पुण्य क्षीण होगये । तब देवताओं ने उसे स्वर्ग से नीचे फेंक दिया ।

संपाती सम्पाती और जटायु ये दोनो भाई गिद्ध थे। एक दिन दोनों ने विचार किया कि देखे सूर्य के अति निकट कौन पहुँच सकता है। यह कहकर दोनो आकाश की ओर चले। वे सूर्य के इतने निकट पहुँच गये कि जटायु के पर जलने लगे तब बड़े भाई ने उसे अपने पखो के नीचे छिपा लिया। इससे जटायु तो वच गया परन्तु सम्पाती अपने परो के जल जाने से विंध्य पर्वत पर जा पड़ा।

पृष्ठ ६०--जड़ = मूर्ख। सिंगरौर = शृङ्गवेरपुर।

पृष्ठ ६१--प्रज्वलित = पुलकायमान। माँजा = वर्षात का जल। व्याल = सर्प। अथयेउ = अस्त।

कथा-तापस अन्ध सांप एक दिन राजा दशरथ शिकार खेलने के लिए सरयू के किनारे पर गये। शिकार खेलते २ रात होगई इतने मे श्रवण कुमार ने आकर नदी में तूम्बा डिवोया। राजा ने समझा कोई वनैला हाथी पानी पी रहा है ज्योंही तीर मारा श्रवण कुमार भूमि पर गिर पड़ा। मनुष्य का सा वोल जान राजा दौड़कर उसके पास गया। श्रवण ने अपने अन्धे माता पिता का हाल सुनाया और यह भी कहा राजा मेरे लिए सोच मत करो। मेरे माता पिता को किसी तरह प्रसन्न करलो राजा जल लेकर उनके पास गया अपने पुत्र का मरण सुन अन्धे अन्धी ने कहा हमको भी हमारे पुत्र की चिता पर रखदो। चिता जलते समय अन्धे अन्धी ने कहा कि राजा हम अपने शोक को वहुत रोकते है। पुत्र वियोग की आग नहीं रुकती है हमारे समान ही तुम्हारे प्राण पुत्र वियोग मे जायगे।

पृष्ठ ६२--अंड अनेक अमल यश छाया = उज्वल यश अनेक ब्रह्मण्डो में छा गया।

विग्यान प्रकाश = विवेक के द्वारा।

पृष्ठ ६३ समीर बेग=पवन चाल से। पैठारा = घुसते ही। कुखेत = बुरे स्थान।

रविकुल जलरुह चँदनि = सूर्य वंश रूपी कमल के लिये चाँदनी के समान दुखदायी।

तुहिन बनज बन मारी = कमल के वन को पाला मार गया हो। भरत-श्रवन-मन-सूल = भरत जी के कानों और मन को खटकने वाले।

पृष्ठ ६४ पाके छत = पके हुए घाव।

हंस बंस दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ॥

भरत जी अपनी माता को किस प्रकार धिक्कारते हैं।

पृष्ठ ६५ कनक-कमल-वर बेलि-वन मानहु हनी तुषार = मानों सुनहरी श्रेष्ठ कमलों की लताओं के वन को पाला मार गया हो।

झहूँ = झमा आना, बेहोशी आना।

पृष्ठ ६६ सत-कुलिस समाना = सैकड़ों वज्रों के समान।

भरत की आत्मग्लानि तथा माता से अपने को अलग बताना।

पृष्ठ ६७ स्रुति पंथ = वेद विधि। बिधु बिष-चवह = चाहे चन्द्रमा विष उगलने लगे। स्रवह हिम आगी = वर्षा से आग्नि निकले।

वारिचर वारि बिरागी = जलचर जल से अलग होजायँ। थन पय श्रवहिं = प्रेम के कारण स्तनों से दूध बहने लगा।

पृष्ठ ६८—मुखर मान = वाचाल अभिमानी। बैषानस = ऋषि। पिसुन = चुगलखोर।

पृष्ठ ६६—भूप रजाई = राजाज्ञा।

तनय जनातिहि जौवनु दयऊ = कथा-श्री शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह शापवश राजा ययाति के साथ होगया परन्तु देवयानी ने शर्मिष्ठा को अपनी दासी बनाकर रखा और पति से वचन भरवा लिया कि कभी दासी की ओर बुरी दृष्टि से नही देखे। परन्तु राजा का गुप्त प्रेम दासी के प्रति होगया इस पर देवयानी अपने पिता के घर आगई। पिताने क्रोधित होकर राजा को शाप दिया कि बुड्ढा होजा। राजा बुड्ढा हो गया। फिर बहुत विनती करने पर शुक्राचार्य जी ने कहा कि यदि तेरा कोई पुत्र यदि अपनी जवानी तुझे दे दे तो तू जवान हो सकता है। इस पर देवयानी के किसी पुत्र ने नही दी तब शर्मिष्ठा दासी के पुत्र ने अपनी जवानी राजा को दी।

पृष्ठ ७०-सिंचत विरह उर अंकुर नये = हृदय के नये विरह रूपी अंकुर सींचने के लिए।

पृष्ठ ७१-गतलाज = लज्जा रहित। रसा = पृथ्वी। रसातल = पाताल। उपहासू हँसी।

कुलिस = वज्र। अस्थि = हड्डी। उपल = पत्थर। प्रजा पाँच = प्रजा पंच।

ग्रह ग्रहीत पुनि वात बस, तेहि पुनि वीछी मारि।
ताहि पियइय वारुनी कहहु कवन उपचार॥

अर्थ-जिसको ग्रहों ने घेर लिया, फिर सन्निपात के वस में है, उस पर भी फिर बिच्छू ने काट खाया है फिर उसे जो मदिरा और पिलाई जाय तो उसके बचने का कौन उपाय है।

भावार्थ-यहाँ मन्थरा रूपी साढ़े साती शनैश्चर, कैकेई रूप जन्म के मंगल, सरस्वती रूप जन्म के चन्द्रमा और जन्म के सूर्य इन चारो ग्रहो ने भरत जी को घेर लिया है। इस पर लक्ष्मण जानकी सहित रामचन्द्र का वनवास रूप सन्निपात ज्वर

चढ़ आया है। इस पर भी राजा की मृत्यु रूप बिच्छू ने डस लिया। इन सब बातों के होते भी राज्याभिषेक रूपी मदिरा का पान कराते हो। फिर मेरे बचने का कौन उपाय है?

पृष्ठ ७२-गुरु विवेक सागर = गुरु ज्ञान के भण्डार हैं। कर-बदर-समाना = हाथ में बेर के समान।

जरनि = दाह। पाही = पैदल। उपाधी = कष्ट, विघ्न। अरिहुक = शत्रु का भी। अनभल = बुरा। बामा = विरुद्ध।

पृष्ठ ७३-जन्मु कुमातु = कुटिल माता से उत्पत्ति। सठ = दुष्ट सदास = दोषी। पागे = सने हुए।

वियोग-विषम-विष दागे = वियोग रूपी कठिन विष में बेहोश। अहि-अघ-अवगुन = सर्प के पाप और अवगुण।

पृष्ठ ७४-तुरग = घोड़े। नाग = हाथी। अरुधन्ती=वशिष्ठ जी की पत्नी। अग्नि = अग्नि होत्र जी का समाज।

सिविका = पालकियाँ। करि-करिनि = हाथी और हथिनी। सोक कृस = शोक से पीड़ित।

पृष्ठ ७५-सई = नदी का नाम। कटकाई = सेना। सानुज= भाई समेत। हथ बाँसहु = पतवारों। बोरहु=डुबोदो। तरनि = नावें। घाटा रोह=घाटों को रोक दो। संजोइल=सावधान।

जननी जोवन बिटप कुठारू = माता के यौवन रूपी वृक्ष का घातक है। करषा = अमर्ष, उत्साह।

पृष्ठ ७६-लावहु धोखजनि=धोखा मत देना। मेदिनि = पृथ्वी। रारी=युद्ध। विग्रह = लड़ाई।

पृष्ठ ७७-छाह छुइ लेइअ सींचा = परछाई पड़ने पर स्नान करते है। बरीषा=वर्ष तक।

पृष्ठ ७८ ताति बायु = ताती बयारि, तनिक भी कष्ट नही हुआ। सेखा = शेषनाग।

दो०—सुख सरूप ....अति बलवान = यहाँ पर दार्शनिक विचार हैं, ऐसे रामचन्द्र जो दाभ के बिस्तर पर सोते हैं ब्रह्मा की गति जानी नहीं जाती है। सृजेउ = बनाया।

पृष्ठ ८०—परदछिना = प्रदक्षिणा। बिमोह बिषादहि = मोह और विषाद। भिनुसार = प्रातःकाल।

कोतल = घोड़े। डोरि आये = हाथ से पकड़ कर। झलका = छाले। पङ्कज कोप = कमल की कली।

पृष्ठ ८१—सकल काम प्रद = समस्त कामनाओं को पूरी करने वाला। पवि पाहन = ओले पत्थर।

चातकु रटनि घटें घटि जाई = चातक रटन न घटावे क्यों कि रटन घटाने से अनन्यता घट जाती है।

बान = चमक। दाहे = तपाने पर।

पृष्ठ ८२—गई गिरा मति धूरि = बुद्धि को सरस्वती ने बिगाड़ दिया था। अयानी = अज्ञान।

धरे देह जनु राम सनेहू = मानो राम के स्नेह ने तुम्हारा रूप धारण कर लिया है।

पृष्ठ ८३—कैकेई करतब राहू = कैकेयी का कर्तव्य रूपी राहु

पृष्ठ ८४—अजिन = मृग चर्म। मातु कुमति बढ़ई = माता की कुबुद्धि बढ़ई के समान। हित कीन्ह बसूल = राज्याभिषेक हित रूपी बसूला। कलि = कलह।

पृष्ठ ८५ सपरिजन = कुटुम्ब सहित।

विधि-बिसमय दायकु = ब्रह्मा को भी अचम्भे में डालने वाली। सची = इन्द्राणी।

स्रक = माला। बनितादिक = स्त्री आदि।

दो०—सम्पति = वैभव चकवी के समान है। भरत जी चकवा के समान है। मुनि की आज्ञा खिलाड़ी है।

आश्रम पिंजरे के समान है जिसमे चकवा चकवी दोनों है परन्तु भोग नहीं करते। पदत्रान = जूते।

पृष्ठ ८६--भरत दरस मेटा भव रोगू = जो जीव जन्तु भरत का दर्शन करते है उनका भव भय मिट जाता है।

पोच कहँ पाँचू = बुरे के लिए बुरा है। भाँडू = भण्डाफोड़ हो जायगा।

पृष्ठ ८७ परवाना = पत्थर। वपु = शरीर।

होत विरह वारिधि मगन, चढ़े विवेक जहाज = वियोगरूपी समुद्र मे डूबते-डूबते ज्ञान रूपी जहाज पर चढ़ गये। धीरज बँधा।

पृष्ठ ८८ भरत आचरनू = भरत का आचरण। कैकेइ जननि जोग सुत नाही = कैकेयी जैसी माता के पैदा करने योग्य यह पुत्र नहीं।

नोट- जिन्होंने राम के दर्शन किये है वे भी भरतजी को राम के समान प्रिय हैं। जेजन कहहिं·······राम लषन सम लेखें।

पृष्ठ ८६ विहवल = गद्गद। कवहि अगम जिनि········· मलिन जनेषु। अर्थ जैसे अहङ्कार और ममता से मलीन मन वाला मनुष्य ब्रह्मानन्द को नहीं पा सकता, ऐसे ही भरत का प्रेम कवि के लिये अगम है।

पृष्ठ ६० सिय रमनू = श्रीरामचन्द्रजी। धिति = शान्ति। हृदय खँभारू = हृदय से दुखी।

विषयी जीव पाइ प्रभुताई, मूढ़ मोह वस मोहि जनाई = विषयी व मूर्ख मनुष्य प्रभुता पाकर मोह के वश हो जाते हैं।

कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी = यहाँ लक्ष्मणजी का उतावलापन प्रकट होता है।

(१) कथा-शशि गुरुतिय गामी एक दिन वृहस्पति की स्त्री

तारा ने काम पीड़ित हो बृहस्पति के शिष्य चन्द्रमा से संभोग किया और चन्द्रमा से एक पुत्र बुद्ध उत्पन्न हुआ। तब चन्द्रमा और बृहस्पति में बड़ा वादविवाद हुआ अन्त देवताओं ने पुत्र चन्द्रमा को दिलवा दिया।

(२) नहुन पीछे कथा लिखी जा चुकी है।

(३) राजा वेणु-वेणु राजा अङ्ग का पुत्र था। बचपन ही से बुरी संगति में पड़ कर पापी हो गया। पिता के मरने पर जब गद्दी पर बैठा तब गर्व से स्वयं को ईश्वर बतलाने लगा और ईश्वर की जगह अपनी पूजा करवाने की आज्ञा दी इस पर देवताओं ने इसको मरा कर दिया।

(४) सहस्रबाहु--एक बार सहस्राबाहु अपनी सेना लेकर वन में शिकार खेलने आया। वहाँ पर प्यास लगी। अपने नौकरों से पानी मंगाया। सेवक ऋषि जमदग्निजी की कुटिया में पहुँचे। ऋषि ने कहा राजा को बुला लो। यहीं पर भोजनादि और विश्राम कर के चले जायँ। राजा आया। सेना बहुत थी परन्तु ऋषि ने सबको भोजन कराया। अन्त में राजा ने कहा कि आपने इतना सामान कहाँ से पाया। तब ऋषि ने कहा कि इस कामधेनु के प्रताप से। तब राजा ने कामधेनु माँगी और न देने पर ऋषि का सिर काट लिया। इसी पर परशुराम ने २१ बार भूमि को क्षत्रिय विहीन कर दिया।

२ए रस = वीर रस।

पृष्ठ ६१ कटिभाथा = कमर में तरकस। सायक = बाण। भाषे = बोले। भमरि भगान = शीघ्र भागना चाहा।

अंचवत = पान करके, प्राप्त करके। मातहि = मदमत्त होते हैं। सेई = सेवन करना।

कबहुक कांजी सीकरनि छीर सिन्धु बिन साय = क्या मठा

की बूँदों से कहीं क्षीर-सागर फट सकता है।

तरुन तरनिहि = मध्यान्ह का सूर्य। निगलई = निगल जाय। सकु = चाहे। घट जोनी = अगस्त्यजी। छोनी = पृथ्वी।

पृष्ठ ६२ मसक फूँक = मच्छर की फूँक।

सगुन क्षीर अवगुन जल ताता, मिलहि रचहि पर पंच विधाता = गुण दूध के समान, और अवगुण गर्म जल के समान। परपंच=सृष्टि। रूपक अलङ्कार। रवि वंस तड़ागा = सूर्य वंश रूपी तालाब। भरत रूपी हंस ने गुण और दोषों का विभाजन कर दिया है। जो न होत जग जन्म भरत को, सकल धरणि धर्मधुर धरत को = यदि भरतजी संसार में पैदा न होते तो समस्त धर्मों की स्थापना कौन करता। अघ अवगुन = दोष और पाप। मातुकृत खोरी = माता द्वारा किये हुये अपराध। उतावल = जल्दी-जल्दी। विदेहू = देह की सुधि न रही।

पृष्ठ ६३ ईति भीति = ईतभय छः होते हैं अतिवर्षा, सूखा, मूषक, टीड़ी, तोता, राजकोप। त्रिविध ताप = दैविक, दैहिक, भौतिक।

मोह महिपाल दल = मोह रूपी राजा का दल। विवेक भुआल = ज्ञान रूपी राजा। खगहा = गैंड़ा।

नोट--यहाँ रामचन्द्रजी को एकाएक राजा जान कर पूरा रूपक बाँधा गया है।

पृष्ठ ६४ - तिमिर अरुनमय रासी=अन्धकार और लालिमा की राशि।

रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहि = धूल को हृदय व मस्तक और आँखों से लगाते हैं। भरतजी धूल को मलते समय राम-मिलन का सुख अनुभव करते है।

होत न भूतल भाउ भरत को, अचर सचर चर अचर करत

को = यदि पृथ्वी पर भरत का भाव न होता तो जड़ को चेतन
और चेतन को जड़ कौन कहता ?

दो०-प्रेम अमिय .....कृपासिंधु रघुवीर = अर्थ = भरतरूपी
क्षीर-सागर को वियोग रूपी मन्दराचल पर्वत से मथ कर
कृपा सागर रामचन्द्रजी ने देवता और सन्तों के लिये (भरत)
के प्रेम रूपी अमृत को निकाला। रूपक अलङ्कार

पृष्ठ ६५—गुदरत = छोड़ते। कवि कुल अगम = कवि की
शक्ति के बाहर। बुद्धि चित अहमति = बुद्धि, विचार और
अहङ्कार को भूल गये।

बाजु सुराग कि गाँडर ताँती। तुलसीदासजी राम भरत के
स्नेह का वर्णन करने मे अपने को असमर्थ पाते है और कहते है
कि कहीं गड़रिये की ताँत से सुन्दर राग बज सकता है।

पृष्ठ ६६ यह बड़ि बात राम के नाहीं ....रवि शशि =
यहाँ अध्यात्मिक विचार है। करोड़ो घरों में जैसे सूर्य की परछाइं
होती है, वैसे ही राम सबके अन्दर है।

पृष्ठ ६७ अङ्का = गोद मे ले लिये। तकि तकि = देख-देख
कर। मन माँगी = मन चाहा। परी वधिक बस मनहु मराली =
मानों हंसिनी वधिक वशही। नील नलिन लोचन - नील कमल
के समान नेत्र। जग गति मायक = माया रूपी संसार की दशा।
अकाजेउ = शरीर त्याग।

पृष्ठ ६८ निरम्बु व्रत = निर्जल व्रत। श्रद्धा भगत समेत =
भक्ति और आदर के साथ। अघ तूला = पापो रूपी रुई।
अघओघ = पापो का समूह। बहुरंग = भाँति भाँति।
अङ्कुर जूरी = पौधे जोड़ जोड़ कर।

पृष्ठ ६६ - सुकृती=अच्छे कर्म वाले, भाग्यवान। मरुधरनि=
रेगिस्तान। देव धुनि धारा = गङ्गाजी की धार। प्रजन =

प्रजा को।

जीव-गन-घाती = जीव हिंसक। पटकटि = कमर को वस्त्र।
पेट अघाहीं = पेट नहीं भरता। पीन = मोटे।

पृष्ठ १०० कुटिल गति = कैकेयी। महि न बीचु विधि
मीचु न देई = हे पृथ्वी तू मुझे जगह क्यों नहीं देती और हे
विधाता तू मुझे मृत्यु क्यों नहीं देता। कीच बिच मगन = कीच
मे डूबी हुई। सलिल = पानी। पाकतशाली = पका हुआ धान।
कुकरमू = पापी। हरिगिरि = कैलाश। रैनि बिहानी = रात्रि
बीत गई। रिपय = ऋषि। स्रुति सेतू = वेद रूपी पुल। खल
दल दलन, देव-हितकारी = श्रीरामचन्द्रजी। विधि हरिहर शशि
रवि दिशि पाल = ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल
सब माया के जीव है और कर्म के वश हैं।

पृष्ठ १०१--टेक जो टेकी=जो प्रतिज्ञा की। आध तजहि बुध-
सरवस जता=बुद्धिमान लोग पूरा जाता हुआ देख कर आधा
छोड़ देते हैं।

अभिमत-मनचाहा। सर्वग्य=सर्वज्ञाता। मुनिमति ठाढ़ि तीर
अवलासी=भरत जी के महिमा रूपी समुद्र के किनारे मुनीश्वर
की बुद्धि अवला के समान खड़ी है अर्थात् भरत जी की महिमा
अवर्णनीय है। बोहित=जहाज।

पृष्ठ १०२--अनुहारी=अनुसार। सूझु जुआरिहि आपुन दाऊ=
जुआरी को अपना दाव ही प्रिय लगता है।

नृपनय निगम निचोरि=लोक मत राजनीत और वेदो कासार
निचोड़ कर।

नोट--श्री रामचन्द्र जी पिता के चरणो की सपथ देकर कहते
है कि भयउ न भुवन भरत मम भाई

आगाई=चुप हो गये। सबुचरु भारु=समस्त भार।

पृष्ठ १०३--खनिस=खोट, द्वेष भाव। महूं=मैं भी। जननी मिस =माता के बहाने से। साधु शुचि को भी=सज्जन और पवित्र कौन हुआ है फरइ कि कोदव बालि सुसाली, मुकता प्रसव कि संबुक-ताली=क्या कोदो की बाल मे सुन्दर चावल फल सकते है और पोखरे की सीप में मोती उत्पन्न हो सकता है। तजहिं विषम विष तामपवीञ्जी=राम को देख कर विष धारी जीव अपने तीक्ष्ण विष को त्याग देते हैं।

पृष्ठ १०४--खभाऊ=हद् बड़ा गये। सत्य सिन्धु=सत्य के सगार दोहा श्रीराम भरतजी से कहते है। हे तात तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब प्रपंच और सम्पूर्ण अमंगलो के भार मिट जायँगे तथा इस लोक में सुन्दर यश और पर लोक मे सुख होगा।

मानुष तनु गुन ग्यान निधाना=मनुष्य ज्ञान का भंडार है।

सोचहिं चाहत होन अकाजू=सब देवता सोचते हैं कि यदि राम घर लौट गये तो राक्षसो को कौन मारेगा और हमारा अकाज होगा।

पृष्ठ १०५--सुरु गुर=बृहस्पति जी। सुर=देवता कलपति सूला =हृदय का कष्ट। रविहि न दोष देव दिशि भूले=कोई दिशा भूल जाय तो सूर्य का दोष नहीं है। विधिगति विषम =विधाता की-गति कठिन है। घाला=नष्ट किया। प्रणत पाल-रामचन्द्र जी अभिमत=मनोवांछित।

पृष्ठ १०६--गुरु स्वामि सनेहू=गुरु और स्वामी का प्रेम। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू=सब शुभ कर्मो का फल और सुन्दर-गति का शृङ्गार है। अभारू=भार रख दिया है। अवगुण उदधि-=अव गुणों का समुद्र। अनट अवरेव=अमिट बुराइयाँ मिट-जायँगी।

पृष्ठ १०७ चरवर=श्रेष्ठदूत। जन कौरा=जनक पुर वासी।

शोच वश बौरा=चिन्ता के कारण बावले हो गये ।

मणि बिनु ब्यालहि=बिना मणि के सर्प । साहनी=सेना-नायक ।

पृष्ठ १०८-आनन्द अवधि अवध रजधानी=आनन्द की सीमा भी अवध मे ही । सभ्रम=सन्देह ।

नोट-राजा जनक को मार्ग का कष्ट तनिक भी प्रतीत नहीं हुआ क्योंकि उनका जी तो राम के पास था, बिना मन के तन का दुख कुछ भी मालूम नही पड़ता-बिनु मन तन दुख सुख सुधि केरी ।

पृष्ठ १०६ रूपक अलकार की रचना-आश्रम सागर.......सोंक सिन्धु अव गाही ।

आश्रम समुद्र है, शान्त रस रूपी जल है, राजा जनक की करुणा रूपी नदी है । यह नदी ज्ञान वैराग्य रूपी किनारे को डुबोती जाती है. शोक बचन रूपी नाले नदी में गिरते हैं, उसासों रूपी पवन से तरगे उठती हैं, जो किनारे के धीरज रूपी वृक्षों को तोड़ती जाती है । तरि सकहिं सरित सनेह को-स्नेह रूपी नदी को पार कर सके ।

त्रिविध जीव=विषयी=साधक=सिद्ध । विनवारी=बिना जल पिये । कृस गात=क्षीण काय ।

पृष्ठ ११०· महिसुर=ब्राह्मण । तिरहुत राजू=राजा जनक । असन अनाजू=अनाज का भोजन ।

दाहिन दैव=ईश्वर की दया ।

पृष्ठ १११ अटन=भ्रमण । संवत दुइ साता=चौदह वर्ष

जनु करुना कछु वेष बिसूरति-मानो करुणा ने बहुत से रूप धारण कर लिये हैं ।

सुनिय सुधा देखिय गरल,सब करतूति कराल । जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृति मराल ।

यहाँ आशय यह है कि राम की गद्दी सूनी थी परन्तु बनवास देखा, अवध में सब हंस है ऐसा सुनते थे परन्तु हंस अकेले भरत निकले थिति=पालन। लय=परलय। सुत-सुत वधू देव सरि वारी =पुत्र और पुत्र वधू गंगा जल के समान पवित्र है।

पृष्ठ ११२ सारदहु कर मति हीचे=शारदा की बुद्धि भी झिचकती है। विवेक निधि वल्लभहि=ज्ञान के समुद्र वाले की प्रिया हो। चिथकि=थकासा। जागवलिक=याज्ञवल्क्य मुनि। मृषा झूठा।

पृष्ठ ११३—पाहुनि तावन प्रेम प्रान की=प्रेम और प्राण की, प्यारी जानकी। तापर राम प्रेम शिशु सोहा=उसपर राम रूपी प्रेम का बालक शोभित है। कीरति सरि=प्रशंसा रूपी नदी। अण्ड करोरी=करोड़ो ब्रह्मांड। सुधा शशि सारू=चन्द्रमा के सारभूत अमृत के समान। जथा मति मोर प्रचारू=अपनी बुद्धि के अनुसार मैं जानता हूं। निदर सुधाइ=अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट। अनुभाव-स्वभाव। तरकी-तर्क नहीं हो सकता। भरत मत एहू=भरत का यह मत है।

पृष्ठ ११५ असमंजस समन = भ्रम नाशक। ज्ञान-विराग विरागें = ज्ञान वैराग्य को वैराग्य होगया।

प्रेम प्रमाना = प्रेम का प्रमाण। छोटे वदन कहहु बड़ बाता = छोटे मुंह बड़ी बात।

पृष्ठ ११६ वैर अन्ध = शत्रुता अन्धी होती है। अरथु अमित अति आखर थोरे = अर्थ बहुत हैं और अक्षर कम हैं।

ज्यों मुख मकुर, मुकुर निज पानी, गहि न जाइ अस अद्भुत बानी = जैसे दर्पण मे मुख होता है और दर्पण हाथ में होता है परन्तु हाथ से मुख पकड़ा नहीं जाता। ऐसी ही भरतजी की वार्ता है।

सुर स्वारथ जड़ जानी=देव को स्वार्थी और अज्ञान समझा।

ब्रह्मा विष्णु महेश की माया भी भरत की बुद्धि का अन्दाज नहीं लगा सकती "विधि हरि हर माया वड़ भारी।"

प्रपंच रचि माया = माया का जाल रचकर।

पृष्ठ ११७ भदेसू = बुरा। घटज = अगस्त्य मुनि। मति छोनी = बुद्धि रूपी पृथ्वी। जोनी = योनि। भारती=वाणी।

पृष्ठ ११८ दूषन मे भूषन सरिस = दोष गुणों के समन हो गये। निगमागम = वेद पुराण। निशील = शील रहित। निरीश = नास्तिक। निशंकी=निडर। गुन गति नट पाठक आधीना = गुणों की गति नट और पढ़ाने वाले के आधीन होतो है।

अंगु अघाई = सब अंग सन्तुष्ट होगये। सुधारिय मोहि = मेरा समय सुधारिये। सुख सींव = अत्यन्त सुख।

पृष्ठ ११९ मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत = महा मलिन इन्द्र मरे हुओ को मार कर भी मंगल चाहता है।

सकेला = इकट्ठा किया। सरिस स्वान मघवान जुबानू = इन्द्र की आदत कुत्ते की समान है।

दो०-भरत विमल यश........रही निहारि = रूपक अलंकार।

पृष्ठ १२०-ससि रस = अमृत के समान। खुआरू = ख्वार कुवड़ाई।

पृष्ठ १२१-भूति मय वेनी = विभूति मय धारा। अवधि भरि = चौदह वर्ष। तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा = तुम्हें कोमल समझकर कठोर वचन कहता हूँ। होइ कुठाँव सबन्धु सहाये= कुठौर पर भाई सहायक होते हैं।

ओड़िय = रोकते हैं। अशनि=तलवार। घावे = चोट। पानि तानि पंकरुह = कर कमल।

पृष्ठ १२२-प्रसंसत = प्रशंसा करते हैं। प्रबोधी = समझाई। राखिय = रख दो। तोय = जल।

लोपेउ काल = काल के वश लोप होगया। निमज्जन = स्नान करते हैं। कुराई = खाई गड्ढे आदि। कुवस्तु = बुरी।

पृष्ठ १२३-जलाश्रय = जलाशय। तृन मृदुताई = तृण कोमल होकर। जमुहात = जम्हाई लेते समय।

सवहिसेउ संतापू = सब दुख सहे। भव दुख दाहूँ = संसार का दुख।

पृष्ठ १२४ खरोसो = मिट सा जाता है।

खीर नीर विवरन हसी = क्षीर-नीर का विवेचन जैसे हस कर देता है वैसे ही भरत जी गुण अवगुण का विवेचन करते है।

खोले = कुमार्ग पर नहीं पड़ता।

राजनीति का उत्तम दोहा मुखिया मुख सो.................. सहित विवेक।

पावरी = खड़ाऊँ। लोग उचाटे अमरपति = इन्द्र ने लोगो विचलित कर दिया।

पृष्ठ १२५-अवरेख = टेढ़ी चाल। विबुध धार = देवताओ की उल्टी धारणा। गोहारी = धारणा।

ग्यान अनल = ज्ञान रूपी आग। पदूम पत्र-कमल के पत्र। जलजाये = उत्पन्न हुए।

कौशिक-वामदेव जावाली = ये ऋषि थे।

पृष्ठ १२७-अवधि = चौदह वर्ष की अवधि। सनेमा = नियम सहित।

पृष्ठ १२८-राका = चाँदनी। सुरवीथी -सुर गङ्गा, आकाश की सड़क।

अदोखा = निर्दोष। भरत आचरनू = भरत के आचरण।